दिशा ДИША

मैत्री एकता बन्धुत्व

ДРУЖБА ЕДИНСТВО БРАТСТВО

March 2023 मार्च 1 मास्को, रूस Moscow, Russia

डॉ. रामेश्वर सिंह

प्रकाशक,संपादक हिंदी त्रैमासिक पत्रिका **दिशा**, मास्को, रूस

+7 985 341 38 59

dishainrus@gmail.com

www.dishamoscow.com

त्रैमासिक हिंदी पत्रिका

PI No FC 77-73489, EL No FC 77-73487

With support of Jawaharlal Nehru Cultural Center, Embassy of India, Moscow

जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र, भारतीय दूतावास, मास्को के सौजन्य से

При поддержке культурного центра им. Джавахарлала Неру, Посольство Индии в Москве

शताब्दी स्मरण

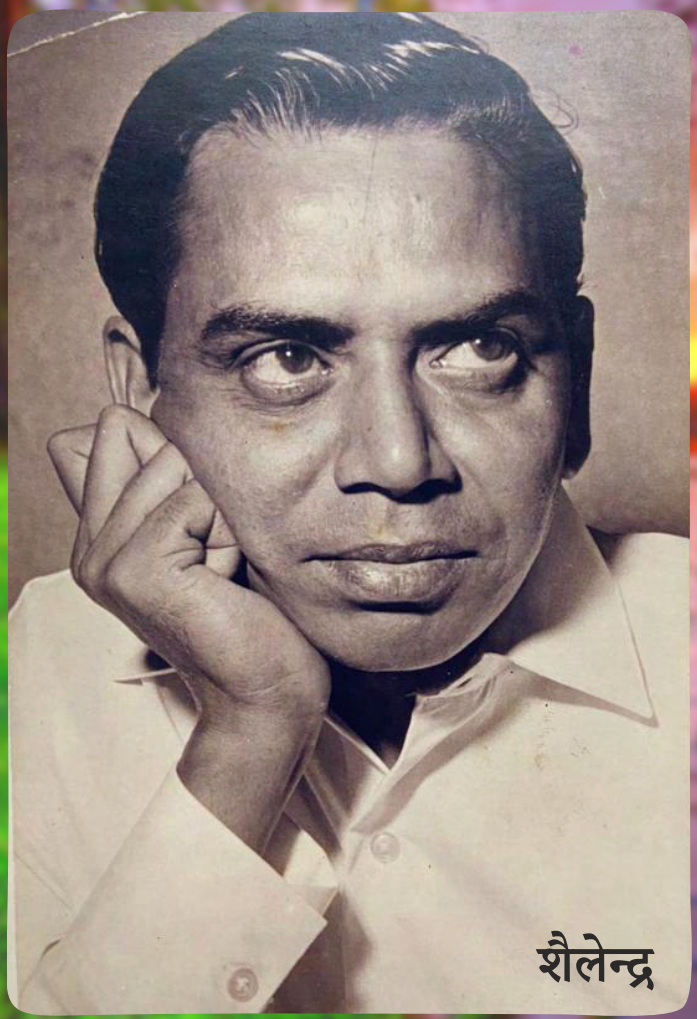

"यदि आप अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे, तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसाएगा l"

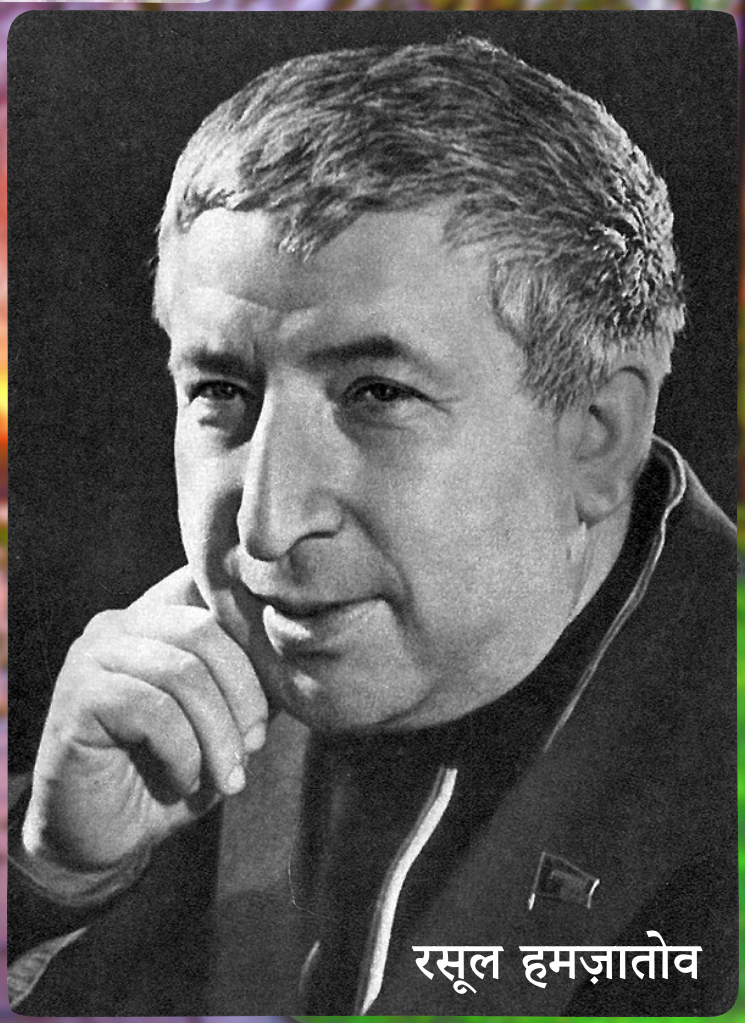

" सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी"

ISSN 2713-1939

हम चलेंगे साथ-साथ

Вместе вперед! Together we shall move forward!

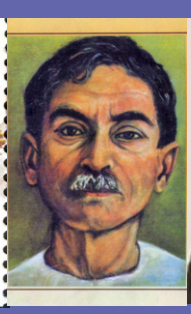

27 лет партнёрской работы на фармацевтическом рынке

Наша цель – повышать качество жизни людей!

PBF
PAX. BONUM. FIDES.

ООО «ПАНБИО ФАРМ» (PBF*) –

фармацевтическая компания с широким портфелем лекарственных средств для различных направлений медицины, которые ведут свою историю на российском фармацевтическом рынке с 1996 года.

Основные направления лекарственных средств

- Неврология
- Ревматология
- Гинекология
- Урология
- Терапия
- Ортопедия
- Эндокринология
- Хирургия
- Кардиология
- Эстетическая медицина

>270 сотрудников

>70 городов

44 лекарственных препарата

4 завода-партнера

Заводы-партнеры PBF

SIMPEX PHARMA
Dedicated to Healthcare Across the Globe

MBI
MAXIGEN BIOTECH INC.

MICRO LABS

Panacea Biotec
Innovation in support of life

ООО «ПанБио Фарм», ОГРН 1195081031848, лицензия ФС-99-02-007432, 143960, Московская обл., г. Реутов, ул.Фабричная, дом 8, лит. В, помещ. 14,
товарный знак PBF, зарегистрирован в ФИПС 12.01.2021 г., приоритет до 13.03.2030 г., рег. №791319. Pax.Bonum.Fides. – Мир.Добро.Вера

पंजीकरण संख्या
PI NO FC 77-73489, EL NO. FC 77-73487
ISSN: 2713-1939 (Print)
ISSN: 2713-1947 (Online)

प्रधान संपादक
डॉ. रामेश्वर सिंह

अतिथि संपादक
डॉ. इन्द्रजीत सिंह

संपादकीय सलाहकार
प्रो० ल्युदमीला खखलोवा
प्रो० गुज़ेल स्त्रिलकोवा
प्रो० बरीस वोल्खोन्स्की
प्रो० अनिल जनविजय
प्रो० इंदिरा गजिएवा
श्री विनय शुक्ला,
डॉ सोनू सैनी
श्री सुशील कुमार 'आजाद'
श्री गौतम कश्यप

तकनीकी सहयोग
नादेज़्दा सिंह
आलोक अवस्थी

संपर्क:– +79853413859

कार्यालय –
www.dishamoscow.com
www.disha.su
dishainrus@gmail.com

लेखों में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति जरूरी नहीं है।
नि:शुल्क वितरण के लिए

प्रकाशक का नाम और पता
NCO" Russian-Indian Friendship Society (Disha),"
117198 Moscow, Street Ostrovityanova, 9/2-97

पत्रिका प्रतियां –999

अनुक्रमणिका

01– प्रधान सम्पादक की कलम से.....	डॉ. रामेश्वर सिंह	02
02– अतिथि सम्पादक की कलम से.....	इंद्रजीत सिंह	03
03– कवि–गीतकार शैलेन्द्र : जीवन वृत्त		05
04– मातृभाषा.....	रसूल हमज़ातोव	05
05– तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर.....	शैलेन्द्र	05
06– गीतों के जादूगर का मैं, छंदों से तर्पण करता हूँ.....	नागार्जुन	...05
07– हिन्दी फिल्मों के सफल और सृजनात्मक गीतकार: शैलेन्द्र.....	नरेश सक्सेना	...06
08– सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी.....	ल्युदमीला खखलोवा	...07
09– प्यार का मीठा महासागर : कवि शैलेन्द्र.....	अरुण कमल	...08
10– आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था – मुकेश.....	मुकेश	...10
11– याद न जाए बीते दिनों की.....	अमला शैलेन्द्र मजूमदार	12
12– आग और राग के अप्रतिम कवि : शैलेन्द्र.....	इन्द्रजीत सिंह	16
13– रसूल हमज़ातोव : जीवन वृत्त.....	साबिर सिद्दीकी	19
14– मेरे अब्बा – रसूल हमज़ातोव.....	सलीहत हमजातवा	...20
15– मां दुर्गे!.....	डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र	...26
16– लोक कवि– रसूल हमज़ातोव.....	साबिर सिद्दीकी	...27
17– क्षेत्रीय भाषा के अंतर्राष्ट्रीय लेखक : रसूल हमज़ातोव.....	अब्दुल बिस्मिल्लाह	29
18– मेरा दागिस्तान : किताबों के महासागर की ओर खुलने वाली...	आरती	30
19– मातृभाषा, विमर्श और साहित्य.....	यादवेन्द्र	32

प्रधान सम्पादक की कलम से...

वर्ष 2023, रूस के प्रख्यात कवि और लेखक रसूल हमज़ातोव साहब और भारत के महान और लोकप्रिय गीतकार शैलेन्द्र जी का जन्म शताब्दी वर्ष है। रसूल हमज़ातोव और शैलेन्द्र दोनों कवियों की कविताओं और गीतों को दुनिया में पढ़ा और सुना जाता है। रसूल साहब की आत्मकथा "मेरा दागिस्तान" को संसार की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद किया गया और अनुवाद के माध्यम से रसूल हमज़ातोव करोड़ों पाठकों के दिलों तक पहुंचे। यह भी प्रसन्नता की बात है कि "मेरा दागिस्तान" का केवल भारत की राजभाषा हिन्दी में ही अनुवाद नहीं हुआ बल्कि अनेक भारतीय भाषाओं जैसे पंजाबी, मराठी और बंगला आदि भाषाओं में भी अनुवाद हुआ।

कवि–गीतकार शैलेन्द्र के गीत केवल भारतीयों के द्वारा ही नहीं गाए और गुनगुनाए जाते हैं बल्कि रूस, उज्बेकिस्तान, चीन, पाकिस्तान, ईरान, तुर्की लीबिया और मिस्र जैसे अनेक देशों में शैलेन्द्र के गीतों के दीवाने हैं। तत्कालीन सोवियत संघ में "आवारा हूँ" तथा "मेरा जूता है जापानी... सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी" शैलेन्द्र के लिखे ये दो गीत अद्भुत रूप से लोकप्रिय थे। शैलेन्द्र की कुछ कविताओं का रूसी भाषा में अनुवाद भी किया गया। फिल्म अभिनेता राजकपूर जितने ज्यादा भारत में लोकप्रिय थे, उससे अधिक तत्कालीन सोवियत संघ में मकबूल थे। उनकी लोकप्रियता में चार चाँद लगाने में निश्चित रूप से उनके मित्र गीतकार शैलेन्द्र का हाथ था।

"दिशा" पत्रिका के माध्यम से हम इन दोनों महान लोकप्रिय कवियों को नमन करते है। "दिशा" पत्रिका भारत और रुस के साहित्यिक–सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत बनाने में लंबे समय से काम कर रही है। माननीय राजदूत श्री पवन कपूर जी का आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका आशीर्वाद और सहयोग हमें ऊर्जा और उत्साह प्रदान करता हैं। जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र, मॉस्को का सतत सहयोग हमें दिशा प्रदान करता है। "दिशा" के इस विशेषांक को तैयार करने और अतिथि संपादक के रूप में कार्य करने के लिए मैं शिक्षाविद और साहित्यकार डॉक्टर इंद्रजीत सिंह का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके प्रयासों से यह अंक समय पर प्रकाशित हो सका। इस अंक के सभी लेखकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस पत्रिका में अर्थपूर्ण, स्तरीय और काबिल–ए–तारीफ़ लेख भेजकर हमें कृतार्थ किया है।

डॉ० ल्युदमीला खखलोवा, डॉ० इंदिरा गजिएवा, डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र, श्रीमती प्रगति टिपणीस, श्री विनय शुक्ला, प्रो० अनिल जनविजय, डॉ० सोनू सैनी, श्री गौतम कश्यप, प्रो० अल्पना दास श्री सुशील कुमार आजाद के प्रति विशेष आभार जिनका मार्गदर्शन "दिशा" को नई दिशा देता है।

डॉक्टर रामेश्वर सिंह
प्रधान संपादक ''दिशा''
dishainrus@gmail.com

!! उपलब्धियाँ एवं सम्मान !!

डॉक्टर रामेश्वर सिंह प्रधान संपादक ''दिशा''

उत्तर प्रदेश अप्रवासी भारतीय रत्न पुरस्कार 2019

दीपोत्सव सम्मान 2018 (अयोध्या शोध संस्थान, उ. प्र.) अयोध्या

रूसी पत्रकार

अध्यक्ष एवं संस्थापक : रूसी भारतीय मैत्री संघ दिशा, मॉस्को, रूस

निर्माता एवं निदेशक : पद्मश्री गेनादिपेचनीकोव मैमोरियल दिशा रामलीला, मास्को

संपादक : त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका 'दिशा' मॉस्को, रूस

संस्थापक : दिशा मास्को समाचार पोर्टल, मास्को, रूस

राजनैतिक सदस्य : 'यूनाइटेड रशिया'

संसद सदस्य के पूर्व सलाहकार, स्टेट ड्यूमा, 6 वें दीक्षांत, रूस

अतिथि सम्पादक की कलम से...

हिन्दी के प्रसिद्ध प्रगतिशील आलोचक और सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड से सम्मानित साहित्यकार डॉक्टर रामविलास शर्मा के अनुसार –**"जिस साहित्य से जनता जागृत हो, वह साहित्य श्रेष्ठ है। उच्च कोटि की होने पर भी कविता यदि कवि तक सीमित रहे अथवा चार आदमियों तक ही सीमित रहे तो वह हमारी दृष्टि से महान नहीं है। महत्ता वहाँ पैदा होती है, जहाँ लोक हृदय और कवि हृदय में तारतम्य है।"** आलोचक रामविलास शर्मा की इस कसौटी पर जनकवि रसूल हमज़ातोव और गीतों के जादूगर और भारत के पूश्किन लोककवि शैलेन्द्र की रचनाएं 24 कैरेट सोने की तरह खरी हैं।

अवार भाषा साहित्य के सूर्य जनकवि रसूल हमज़ातोव की रचनाओं ने न केवल दागिस्तान और तत्कालीन सोवियत संघ के पाठकों को अपना दीवाना बनाया, बल्कि दुनिया के अनेक भाषाओं के पाठकों के दिलों में खास जगह बनाई। रसूल हमज़ातोव मूलतः कवि थे लेकिन उनकी आत्मकथा **"मेरा दागिस्तान"** ने उन्हें दुनिया का महबूब और मकबूल लेखक बनाया। दुनिया की अनेक भाषाओं में इस आत्मकथा का अनुवाद उनकी लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण है। **"मेरा दागिस्तान"** पढ़ते समय हमें कविता का भी आनंद मिलता है और संस्मरण का सुख भी, रसूल साहब की अप्रतिम किस्सागोई के इंद्रधनुषी रंग हमारे मन का कोना –कोना भी रंग देते हैं। योद्धाओं के किस्से पढ़कर हमारे मन में भी वीरता का संचार होता है, मार्मिक आख्यान हमारी आँखों को ही नहीं हमारे अंतर्मन को भिगोने में समर्थ हैं। वास्तव में **"मेरा दागिस्तान"** साधारणीकरण की अनुपम मिसाल है। रसूल हमज़ातोव का दिलचस्प अंदाज़े बयां, जादुई भाषा–शैली पाठकों को इस कदर सम्मोहित करती है कि वह स्वयं को दागिस्तान में मौजूद पाता है। पूरी किताब में इतनी अधिक प्रभावशाली अनुकरणीय सूक्तियाँ है कि जिनका जादू पाठक के सर चढ़ के बोलता है। रसूल लिखते हैं **"यदि तुम अतीत पर बंदूक से गोली चलाओगे तो भविष्य तुम पर तोपों से गोले बरसाएगा।"** ऐसे अमर वाक्य पढ़कर लगता है कि भगवान कृष्ण, अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे हैं। महाकवि टैगोर ने मनुष्य को सबसे उपर रखा है। छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना स्वीकार किया है "सुंदर हैं सुमन विहग सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।" 1962 में प्रकाशित कविता संग्रह "विसोकिये ज़बयोज़दी "(ऊंचे सितारे) में रसूल लिखते हैं –

"उड़ के पहुंचे है रॉकेट कई मरतबा
दूर तारों औ' अम्बर की ऊंचाई तक
लोगो, लोगों, ए मेरे सितारों मगर
काश, मैं उड़के आ पाऊँ
बस तुम तलक।"

प्रेम और मनुष्यता का शाश्वत संदेश ही उन्हें दुनिया का महान लेखक बनाता है। रसूल हमज़ातोव के 80 से अधिक कविता संग्रह प्रकाशित हुए। अंग्रेजी भाषा के महान कवि टी एस इलियट के अनुसार – **"अच्छी कविता मनोरंजन से अधिक हमारी चेतना का विकास करती है, हमारी संवेदना का परिष्कार करती है।"** इलियट की इस कसौटी पर लोककवि रसूल हमज़ातोव की कविताएं खरी उतरती हैं। दागिस्तान के महान योद्धा इमाम शमील के खिलाफ़ रसूल ने कविता लिखी थी, लेकिन समय के साथ–साथ उन्हें एहसास हुआ कि यह उनसे बड़ी गलती हुई है और उन्होंने इमाम शमील के समर्थन में कविता लिखकर अपनी भूल को सुधारकर कवि धर्म का निर्वाह किया।

शैलेन्द्र सामाजिक सरोकार और प्रगतिशील चेतना के अप्रतिम ऊर्जावान कवि–गीतकार हैं। शैलेन्द्र की कविताओं में संवेदना और सृजन का राग है, प्रतिरोध और प्रतिबद्धता की आग है और समानता, स्वतंत्रता तथा सद्भावना से परिपूर्ण समाज का हसीं ख्वाब है। उन्होंने मनुष्यता की रक्षा के गीत गाए। अन्याय, असमानता, उत्पीड़न, शोषण और कुपोषण के अंधेरों के खिलाफ़ हौसलों और उम्मीदों के दीपक जलाए। प्रेम और उदात्त जीवन मूल्यों की पैरोकारी की। शैलेन्द्र की कविताओं को पढ़कर मन की आँखें खुलने लगती है, निराशा का कुहासा छँटने लगता है, मौन मुखरित होने लगता है, "चुप्पियाँ" अखरने और सुइयों सी गड़ने लगती हैं। स्याह रात को सुनहरे प्रभात में बदलने का साहस मिलने लगता है। शैलेन्द्र ने **"तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यक़ीन कर, अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर"** का ऐसा करिश्माई मंत्र दिया है जिसे पूरी शिद्दत, जोश और जुनून से आत्मसात करने पर स्वर्ग को धरती पर उतारने का स्वप्न भी साकार हो उठता है।

आलोचना के शिखर पुरुष नामवर सिंह ने सच ही कहा – "शैलेन्द्र की कविताएं सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई हैं। वे

सही और सच्चे अर्थों में जनकवि थे। राजकपूर ने शैलेन्द्र को भारत का पुश्किन कहा है।" गीत सृजन की कला में माहिर होने के कारण ही जनकवि नागार्जुन ने उन्हें **"गीतों का जादूगर"** कहा है। सरल और सहज शब्दों में गहरी बात लिखने के कारण ही फणीश्वर नाथ रेणु उन्हें **"कविराज"** कहते थे।

शैलेन्द्र ने **'बरसात,' 'आवारा,' बूट पॉलिश,' जिस देश में गंगा बहती है,' 'जागते रहो,' 'सीमा,' 'गाइड', 'तीसरी कसम' और ' मेरा नाम जोकर' आदि 172 प्रसिद्ध फिल्मों में लगभग 800 लोकप्रिय, मधुर, कर्णप्रिय, सामाजिक सरोकार प्रधान और कालजयी गीत रचकर न केवल भारत में हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है अपितु चीन, तत्कालीन सोवियत संघ (विशेष रूप से रूस), ईरान, तुर्की आदि देशों में अपने लोकप्रिय गीतों के माध्यम से हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति की गरिमा और प्रतिष्ठा बढ़ाने में अतुलनीय योगदान दिया है। उनके लिखे गीत "आवारा हूँ (फिल्म आवारा) और "मेरा जूता है जापानी .. .. फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी (श्री 420) आज भी रूस में गाए गुनगुनाए जाते हैं। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रूसी लेखक अलेक्जेंडर सोलज़ेनिस्तीन ने अपने उपन्यास "कैंसर वार्ड" में शैलेन्द्र के "आवारा हूँ" गीत की लोकप्रियता का जिक्र किया है।**

शैलेन्द्र का कविता संग्रह "न्यौता और चुनौती" 1955 में प्रकाशित हुआ, जिसे प्रगतिशील कविताओं का जीवंत दस्तावेज़ कहा जाता है। जनकवि शैलेन्द्र को गुज़रे 56 वर्ष बीत गए हैं लेकिन उनके गीत आज भी कबीर के दोहों ,सूरदास और नानक के पदों, तुलसी की चौपाइयों और गालिब के शेरों की तरह सुने और सुनाए जाते हैं। उन्हें तीन बार सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए (यहूदी, अनाड़ी और ब्रह्मचारी फिल्म) "फिल्म–फेयर" अवॉर्ड मिला। डाक तार विभाग ने 2013 में उनपर डाक टिकट जारी किया। शैलेन्द्र और रसूल हमज़ातोव दोनों को जनकवि कहा जाता है। दोनों महान कवि न केवल संवेदनाओं के क्षितिज का विस्तार करते हैं बल्कि भाव बोध का परिष्कार भी करते हैं। संवेदना, सामाजिक सरोकार, सौन्दर्य बोध, साहित्यिक प्रतिबद्धता, आग और राग के दोनों अपराजेय गायक हैं।

डॉक्टर रामेश्वर सिंह, "दिशा" के संस्थापक और प्रधान संपादक ने मुझसे आग्रह किया कि शैलेन्द्र और रसूल हमज़ातोव जैसे कालजयी कवियों की स्मृति में 'दिशा' पत्रिका के इस विशेषांक को प्रकाशित करने में बतौर अतिथि संपादक अपनी सेवाएं दूँ। मेरे लिए "दिशा" के इस खास अंक से अतिथि संपादक के रूप में जुड़ना सम्मान की बात है। इस विशेषांक को मानीखेज और महत्वपूर्ण बनाने के लिए मैंने शैलेन्द्र और रसूल हमज़ातोव के विशेषज्ञ विद्वानों और प्रशंसकों से संपर्क किया और सभी ने इस लघु पत्रिका के लिए अपने महत्वपूर्ण लेखों को भेजकर हमें कृतार्थ किया है।

सर्वप्रथम प्रगति टिपणीस जी का हार्दिक आभार जिन्होंने रसूल हमज़ातोव साहब की बेटी सलीहत हमज़ातवा जी का आत्मीयता और संवेदना से लबरेज लेख का रूसी भाषा से हिन्दी में अनुवाद करके हमें भेजा। यह भी सुखद संयोग है कि शैलेन्द्र जी की बड़ी बेटी अमला शैलेन्द्र मजूमदार ने अपने पिता से जुड़ी अनेक यादों को बहुत आत्मीयता से लिखा है। बेटियां अपने पिताओं के पारिवारिक और साहित्यिक योगदान को कैसे जाँचती – परखती हैं, पाठकों को निश्चित रूप से इन लेखों को पढ़कर बेहद आनंद और सुकून मिलेगा। रूसी भाषा के विद्वान और सोवियत लैंड नेहरू अवॉर्ड से सम्मानित प्रोफ़ेसर साबिर सिद्दीकी साहब ने रसूल हमज़ातोव पर शोध कार्य भी किया है और उन्हें चार–पाँच बार रसूल साहब से मिलने का सौभाग्य भी मिला। प्रो. साबिर ने रसूल हमज़ातोव की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है जो "धरती की सुंदरता पीकर" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है, जिसमें लगभग 90 कविताएं शामिल हैं। प्रोफ़ेसर सिद्दीकी ने हमारी प्रार्थना पर अपना आलोचनापरक काव्यात्मक लेख भेजकर हमें उपकृत किया है। साहित्यकार अब्दुल बिस्मिल्लाह का लेख रसूल हमज़ातोव को जानने समझने का एक अलग नजरिया प्रदान करता है। जानी–मानी कवयित्री और संपादक आरती जी का आभार, जिन्होंने अविलंब हमें अपना लेख उपलब्ध कराया। उनका लेख रसूल साहब को जानने–समझने की नई दृष्टि देता है। कवि, आलोचक और अनुवादक यादवेन्द्र जी ने हमजातोव को अलग अंदाज में परखने की सार्थक कोशिश की है। रूसी – हिन्दी की विशेषज्ञ डॉक्टर ल्युदमीला खखलोवा, प्रसिद्ध कवि नरेश सक्सेना जी, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कवि अरुण कमल जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना नैतिक कर्तव्य समझता हूँ। शैलेन्द्र के मित्र गायक मुकेश का मार्मिक लेख 'धर्मयुग' पत्रिका से साभार लिया गया है। सभी लेखकों, अनुवादकों और इस पत्रिका में प्रयोग किए गए सभी चित्रों के छायाकारों का हार्दिक आभार। जाने माने अनुवादक अनिल जनविजय का विशेष आभार। प्रो० बरीस वोल्खोन्स्की जी को रसूल हमजातोव की समस्त कृतियों की जानकारी उपलब्ध कराने के लिए विशेष आभार। तकनीकी सहयोग के लिए श्री संतोष देवल और श्रीमती खलीसा का हार्दिक आभार। आशा है पाठकों को यह अंक पसंद आएगा।

–इन्द्रजीत सिंह
एम्बसी ऑफ इंडिया स्कूल,
भारतीय दूतावास, मॉस्को
ईमेलः–indrajeetrita@gmail.com

कवि–गीतकार शैलेन्द्र : जीवन वृत्त

वास्तविक नाम – शंकर दास राव
जन्म – 30 अगस्त, 1923, रावलपिंडी

पहला फिल्म गीत
बरसात में हमसे मिले तुम सजन (बरसात, 1949)

अंतिम गीत
तुम प्यार से देखो हम प्यार से (सपनों का सौदागर, 1968)

लोकप्रिय फिल्में
आवारा, दो बीघा जमीन, श्री 420, जिस देश में गंगा बहती है, बूट पॉलिश, जागते रहो, यहूदी, मधुमती, अनाड़ी, काला बाजार, गाइड, जंगली, बंदिनी संगम, तीसरी कसम और मेरा नाम जोकर आदि

फिल्म निर्माण
तीसरी कसम (1966, राष्ट्रपति के स्वर्ण कमल से सम्मानित)

फिल्मफेयर पुरस्कार (गीत लेखन के लिए)
ये मेरा दीवानापन है (फिल्म यहूदी 1958)
सब कुछ सीखा हमने न सीखी (अनाड़ी, 1959)
मैं गाऊँ, तुम सो जाओ (ब्रह्मचारी, 1968)

कविता संग्रह
न्यौता और चुनौती (1955)
अंदर की आग (निधन के 47 वर्ष बाद 2013 में)

निधन – 14 दिसंबर 1966, मुंबई

मातृभाषा

अपनी ही भाषा में सुनकर कुछ धीमी–धीमी आवाज़ें
मुझे लगा कुछ ऐसे, जैसे जान जिस्म में फिर से आए
समझ गया मैं वैद्य–डॉक्टर मुझे न कोई बचा सकेगा
केवल मेरी अपनी भाषा, मुझे प्राण दे सके, बचाए।
शायद और किसी को दे दे, सेहत कहीं अजनबी भाषा
पर मेरे सम्मुख वह दुर्बल, नहीं मुझे तो उसमें गाना
और अगर मेरी भाषा के, बदा भाग्य में कल मिट जाना
तो मैं केवल यह चाहूँगा, आज, इसी क्षण ही मर जाना।
मैंने तो अपनी भाषा को, सदा हृदय से प्यार किया है
बेशक लोग कहें, कहने दो, मेरी यह भाषा दुर्बल है
बड़े समारोहों में इसका, हम उपयोग नहीं सुनते हैं
मगर मुझे तो मिली दूध में, माँ के, वह तो बड़ी सबल है।

–रसूल हमज़ातोव
(रूसी से हिन्दी में अनुवाद डॉ० मदनलाल मधु)

तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यक़ीन कर

तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यक़ीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो, उतार ला जमीन पर!
ये गम के और चार दिन, सितम के और चार दिन,
ये दिन भी जाएंगे गुज़र, गुज़र गए हजार दिन,
सुबह ओ' शाम के रंगे हुए गगन को चूमकर,
तू सुन ज़मीन गा रही है कब से झूम–झूम कर
तू आ मेरा सिंगार कर, तू आ मुझे हसीन कर!
हमारे कारवां का, मंज़िलों को इंतजार है,
यह आंधियों की, बिजलियों की, पीठ पर सवार है
तू आ कदम मिला के चल, चलेंगे एक साथ हम,
मुसीबतों के सर कुचल, बढ़ेंगे एक साथ हम,
कभी तो होगी इस चमन पर भी बहार की नज़र!
टिके न टिक सकेंगे भूख रोग के स्वराज ये,
ज़मीं के पेट में पली अगन, पले हैं ज़लज़ले,
बुरी है आग पेट की, बुरे हैं दिल के दाग ये,
न दब सकेंगे, एक दिन बनेंगे इन्क़लाब ये,
गिरेंगे जुल्म के महल, बनेंगे फिर नवीन घर!

–शैलेन्द्र

गीतों के जादूगर का मैं, छंदों से तर्पण करता हूँ

गीतों के जादूगर का मैं, छंदों से तर्पण करता हूँ
अपने युग की व्यथा–कथा ही कड़ियों में ढलती जाती थी
जाने कितना नेह भरा था, बाती थी जलती जाती थी
गीत तुम्हारे गूंज रहे हैं अब भी लाख–लाख कानों में
होंठ तुम्हारे फड़क रहे हैं छाया–छवि की मुस्कानों में
सच बतलाऊँ तुम प्रतिभा के ज्योतिपुत्र थे, छाया क्या थी,
भली–भाँति देखा था मैंने, दिल ही दिल थे, काया क्या थी।
जहाँ कहीं भी अंतर्मन से, ऋतुओं की सरगम सुनते थे,
ताज़ा कोमल शब्दों से तुम रेशम की जाली बुनते थे।
जन–मन जब हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम,
साथी थे, मज़दूर–पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम ।
युग की अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन–घटा–सी गहराई
प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति–पंक्ति नभ में लहराई।
तिकड़म अलग रही मुस्काती, ओह, तुम्हारे पास न आई,
फ़िल्म–जगत की जटिल विषमता, आख़िर तुमको रास न आई।
ओ जन–जन के सजग चितेरे, जब–जब याद तुम्हारी आती,
आँखें हो उठती हैं गीली, फटने–सी लगती है छाती।
प्रिय साथी शैलेन्द्र, जुहू तट की वे बातें भूल न जाना
भूल न जाना, साथ बैठकर उस प्रकार लिखना–लिखवाना
इन दस वर्षों के सुख –दुख का भोग भाग अर्पण करता हूँ
गीतों के जादूगर का मैं, छंदों से तर्पण करता हूँ।

–नागार्जुन

हिन्दी फिल्मों के सफल और सृजनात्मक गीतकार: शैलेन्द्र

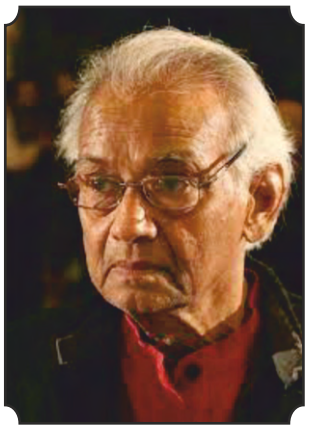

—नरेश सक्सेना
E-mail : nareshsaxsena68@gmail.com

2023, गीतकार शैलेन्द्र का जन्म शताब्दी वर्ष है। वे हिन्दी फिल्मों के सबसे सफल, सुंदर और सृजनात्मक गीतकार रहे हैं। दिवंगत होने के वर्षों बाद भी उनके गीत उतने ही लोकप्रिय हैं। सिने गीतकार होने के बावजूद उनकी काव्य प्रतिभा अद्भुत थी।

किसी भी भाषा के गीत और कविताएं अनुवादित होकर ही दूसरे देशों तक पहुँच पाती हैं; शैलेन्द्र एक विरल उदाहरण हैं जिनके गीत बिना अनुवाद के ही दुनिया भर के देशों में गाए जाते रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी अनुवाद के जरिए ही दुनिया को उपलब्ध हुए, लेकिन शैलेन्द्र के गीत मूल हिन्दी में ही विदेशियों के जुबान पर आज भी जीवित हैं। सिर्फ रूस में ही नहीं हंगरी के एक रेस्त्रां में जो पूरी तरह विदेशी सैलानियों से भरा था, मैंने "आवारा हूँ" और "मेरा जूता है जापानी" जैसे गीतों को स्वयं सुना है। ईरान, अफगानिस्तान, टर्की, मिस्र और लीबिया में उनकी लोकप्रियता का मैं जीवित गवाह हूँ।.. इसे इस बात से समझा जा सकता है कि फिल्म 'संगम' काहिरा के एक सिनेमाघर में लगातार तीन साल तक चलती रही और त्रिपोली में संकट से मेरी रक्षा शैलेन्द्र के एक गीत के माध्यम से ही हुई।

हुआ यह था कि एक दिन, देर रात त्रिपोली में, मैं अपने कमरे में माउथ ऑर्गन पर "प्यार हुआ इकरार हुआ" की धुन बजा रहा था जिसे सुनकर कई इजिपिशयन इंजीनियर मेरे कमरे के बाहर आकर खड़े हो गए; उनसे हुई मित्रता के कारण ही मैं वहाँ से सकुशल वापस लौट सका। भारत सरकार शैलेन्द्र के नाम पर गीतों के लिए प्रतिवर्ष एक सम्मान घोषित कर सकती है, जिसमें सिने गीतकारों सहित रेडियो, टेलीविजन, और अन्य माध्यमों से जुड़े लोकप्रिय गीतकारों को शामिल किया जा सकता है।

शैलेन्द्र की लोकप्रियता का एक उदाहरण और .. .. दिल्ली जेएनयू के भाषा विभाग का सभागार आशुतोष कुमार, मदन कश्यप, मैत्रेयी पुष्पा और दिल्ली के अन्य साहित्यकारों, शोध छात्रों और प्रोफेसरों से भरा था। मंच पर डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ० मैनेजर पांडे, डॉ० विजय बहादुर सिंह के साथ – साथ अन्य विभागों के प्रोफ़ेसर भी थे। अचानक जब मुझसे भी बोलने को कहा गया तो मैंने शैलेन्द्र के एक गीत का सहारा लिया और पहली पंक्ति पढ़ी —"बहुत दिया देने वाले ने तुझको .. इससे आगे मैं बोलता कि पूरे हॉल से एक सामूहिक स्वर गूँजा —"आँचल ही न समाए तो क्या कीजे।" तुलसी और कबीर जैसे कवियों के अलावा ऐसा कौन कवि है जिसकी एक पंक्ति आप पढ़े और दूसरी पंक्ति साहित्यिक विद्वतजनों का समाज सामूहिक रूप से दोहराए।

जैसे वड्र्सवर्थ और टैगोर की पंक्तियों का मर्म कभी—कभी, शैलेन्द्र के गीतों में झाँकता है, वैसे ही शैलेन्द्र के गीतों के आशय केदारनाथ सिंह से लेकर कुमार विश्वास तक के गीतों में उन्हें देखा जा सकता है। जब 'बॉब डिलेन' को साहित्य का 'नोबेल' मिला तो उदय प्रकाश ने फेसबुक पर गुलज़ार को याद किया। गुलज़ार बहुत अच्छे गीतकार हैं, लेकिन मुझे शैलेन्द्र याद आए।

सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी

-ल्युदमीला खखलोवा
E-mail : khokhl@iaas.msu.ru

"मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिशतानी, सर पे लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिंदुस्तानी" फिल्म श्री 420 के इस गीत में कवि –गीतकार शैलेन्द्र ने न केवल वैश्वीकरण की अवधारणा को पुख्ता किया है बल्कि "सर पे लाल टोपी रूसी" पंक्ति के माध्यम से भारत – रूस मैत्री की भी अनुपम मिसाल पेश की है। उनके लिखे दो गीत **"आवारा हूं आवारा हूं"** तथा **"मेरा जूता है जापानी"** गाकर और सुनकर हमारी पीढ़ी के लोग बड़े हुए हैं। बहुत से रुसियों के लिए भारत का मतलब टैगोर, प्रेमचंद, कृश्न चन्दर, जवाहरलाल नेहरू और राज कपूर था। राज कपूर हमारे यहां 30–35 साल तक अत्यधिक लोकप्रिय रहे। पुरानी पीढ़ी के लोग उन्हें आज भी याद करते हैं। जब मैं बच्ची थी, तब तत्कालीन सोवियत संघ में राजकपूर की फिल्में प्रदर्शित होने लगीं। उस समय रूस में बहुत कम विदेशी फिल्में दिखाई जाती थीं और भारतीय सिनेमा ने सनसनी मचा दी थी। हमारे दर्शकों को भारतीय नायकों से प्यार हो गया, ये ज़िंदादिल, खुशमिज़ाज, प्रेम में ईमानदार नायक रूस में बहुत लोकप्रिय हो गए। अधिकांश रूसी ये गीत गाते नजर आते थे "मेरा जूता है जापानी।" दुर्भाग्य से, दर्शकों में से कुछ ही कवि शैलेंद्र का नाम जानते थे। अधिकाँश लोगों को सिर्फ अभिनेताओं के नाम मालूम थे। मेरा व्यक्तिगत रूप से मानना है कि रूस में राजकपूर की लोकप्रियता में शैलेन्द्र जी के दो गीतों – "आवारा हूं" तथा "मेरा जूता है जापानी" का बहुत बड़ा हाथ है। पूरा गीत भले ही रूसी लोगों को न याद हो लेकिन इन गीतों के मुखड़े करोड़ों रूसी जनता की जबान पर थे। शैलेन्द्र ने फिल्म गीतकार के साथ साथ एक प्रखर प्रगतिशील कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई। "न्यौता और चुनौती" 1955 में प्रकाशित उनका कविता संग्रह प्रगतिशील कविताओं का अप्रतिम दस्तावेज़ है। "हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है" जैसी कालजई रचना, आज भी लाखों हिंदुस्तानी अपने हक के लिए इस कविता/नारे का प्रयोग करते हैं। "तू ज़िंदा है तो ज़िन्दगी की जीत में यकीन कर, अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर" शैलेन्द्र जी की यह कविता किसी भी निराश, हताश और मजबूर व्यक्ति को हौसला बढ़ाने और जीवन पथ पर आगे बढ़ने और मंज़िल पाने के लिए उत्साह और जुनून पैदा करती है, यह कविता निर्विवाद रूप से काबिले– ए– तारीफ़ है। शैलेन्द्र ने समानता की पैरोकारी की जो समाजवाद की नींव है। उन्होंने अपने देश की आज़ादी की लड़ाई में भी हिस्सा लिया। राजकपूर की फिल्में रूस में बहुत लोकप्रिय थी और उनकी फिल्मों के अधिकांश गीत शैलेन्द्र ही लिखते थे। प्रोफेसर चेलीशेव ने 1959 में "भारत के कवि" नाम से रूसी भाषा में एक कविता संग्रह का संकलन और संपादन किया था उसमें हिन्दुस्तान के अनेक बड़े कवियों के साथ साथ शैलेन्द्र जी की दो कविताओं – "15 अगस्त" तथा "प्यारी जन्मभूमि" को भी शामिल करके कवि शैलेन्द्र की प्रतिभा को नमन किया था। जब हिंदी पढ़ाते समय, हम आमतौर पर भारतीय फिल्मों के लोकप्रिय गीतों का उपयोग करते हैं। हमारे सभी छात्र गाते हैं "मेरा जूता है जापानी" –मैं सोचती हूँ कि विद्यार्थियों को अद्भुत प्रतिभाशाली कवि शैलेंद्र के नाम से ही नहीं, उनकी रचनाओं से परिचित कराना अत्यावश्यक है। सरल, समझने में आसान भाषा में लिखे उनके गाने याद रखने में कोई दिक्कत नहीं होगी और हिंदी सीखने में आनंद आएगा। शैलेन्द्र जी की जन्म–शताब्दी पर मैं उन्हें नमन करती हूं और यह कामना करती हूं कि उनकी कविताओं और गीतों का रूसी भाषा में संकलन जल्द प्रकाशित हो। जनकवि शैलेन्द्र जी की जन्म शताब्दी पर भारत में अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाएं, जिससे नई पीढ़ी उनके योगदान से परिचित हो सके। मॉस्को में भी शैलेन्द्र जी की स्मृति में कार्यक्रम होने चाहिए।

प्यार का मीठा महासागर : कवि शैलेन्द्र

अरुण कमल
(साहित्य अकादमी और सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित कवि)
ईमेल– arunkamal1954@gmail.com

याद आता है कि जब मैं नवीं–दसवीं जमात में तब के शाहाबाद ज़िले के हसनबाजार हाई स्कूल में पढ़ता था और बाकी लड़कों की तरह शैलेन्द्र के गीतों का दीवाना था तब मेरे एक सहपाठी ने जिसका आरा शहर में आना जाना था और रिश्तेदारियाँ थीं, यह कहकर हमें अचम्भित कर दिया कि शैलेन्द्र वास्तव में आरा के पास के रहने वाले हैं और उनके गोतिया–बिरादरी के लोग ऐसा बताते हैं। हमें विश्वास नहीं हुआ। हमें जो मालूम था उसके मुताबिक़ वे पंजाब तरफ के कहीं पच्छिम के ठहरते थे। जब आगे पढ़ने के लिए पटना आया और प्रलेस, इप्टा तथा कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों से संपर्क बना तब भी ऐसी किसी बात का एहसास कहीं न दिखा। बहुत बाद में ऐसा कुछ पता चला, पर खबर पक्की न थी। हाल में पता चला कि गीतकार एस एच बिहारी भी आरा के पास के थे। अभी इन्द्रजीत साहब के कहने पर जब लिखने के सिलसिले में उनकी संपादित किताबों में श्री रविभूषण और श्री रत्नेश कुमार के लेख पढ़े तो बचपन के दोस्त द्वारिका की बात का मर्म खुला। शैलेन्द्र तो हमारे यहाँ के थे, भोजपुरिया। हाँलाकि इन दो लेखों में भी गाँव के नाम अलग अलग दिए हुए हैं। ख़ैर। गलती मेरी भी है। इतनी इतनी बार आरा गया, बचपन से अब तक, और इतने लेखक कवि भी वहाँ मिले, मेरी सगी बहन भी वहीं है, लेकिन कभी मैंने पता लगाने की कोशिश नहीं की। आज मैं ताकतवर महसूस कर रहा हूँ और गौरवान्वित कि मेरा सबसे प्रिय गीतकार आखिर है तो हमारी ही मिट्टी का जो पूरी दुनिया का हो गया, जिसकी छवि हर कहीं लहलहा रही है। लेकिन शर्मिन्दा भी हूँ कि हमारे प्रांत में कहीं कुछ निशानी नहीं है। अगर तुम्हारे पास कोई ज़मीन जायदाद नहीं है तो तुम वहाँ के नहीं हो, भले सारी दुनिया के हो रहो।

शैलेन्द्र हिन्दी के सबसे बड़े गीतकार हैं। ऐसा इसलिए कि भाषा की ऐसी सादगी, बहाव और लोच किसी दूसरे गीतकार में नहीं। 'सो सब हेतु कहा मैं गाई', तुलसीदास रामचरित मानस में कहते हैं। यह गा कर कहना बहुत दुर्लभ विद्या है जो दूसरे भोजपुरिया भिखारी ठाकुर को प्राप्त थी। शैलेन्द्र गाकर कहते हैं और दिल की बात कहते हैं जो सबकी कैफ़ियत है। खड़ी बोली हिन्दी में ऐसी लोच ला पाना बहुत मुश्किल था और है, जो खड़ी बोली उर्दू में पहले से थी या फिर हमारी ब्रज अवधी भाषाओं में। लगता है बोल अपने आप बिना किसी कोशिश के अंदर से निकले आ रहे हैं, और सिर्फ बोलना कविता बन जाता है – ''आवारा हूँ;'' ''जीना यहाँ मरना यहाँ।'' और शैलेन्द्र पूरे खड़े वाक्यों के कवि हैं, और लम्बे लम्बे वाक्यों के रचयिता –बोल री कठपुतली डोरी कौन संग बाँधी तूने, ये नाच नाचे किसके लिए? ठीक है कि फ़िल्म में स्थिति वगैरह सब दूसरे तय करते हैं, लेकिन वे सब बिना शब्दों के एक डग न चल पाएँ। एक बार हॉलीवुड में शब्दकारों ने हड़ताल कर दी और पूरा हॉलीवुड ठप्प हो गया। उतने दिन सारे काम बंद रहे। दूसरी बात ये कि अधिकांश गैर रोमांटिक कविता दी गयी स्थितियों, प्रसंगों, कथा–संयोजनों से निकलती है। रामायण या महाभारत के प्रसंगों ने अनेक महान कृतियों को जन्म दिया, ऐसा कहते हुए मैं स्तर–भेद को भूल नहीं रहा, बल्कि सिर्फ यह कह रहा हूँ कि प्रदत्त सिचुएशन पर अच्छे गीत का निर्माण कर सकते हैं जैसा कि शैलेन्द्र सरीखे कवियों ने सिद्ध किया। यह सही है कि ऐसे गीत जीवन का नया संधान नहीं करते या नयी जीवन–दृष्टि नहीं गढ़ते जो निराला, मुक्तिबोध या प्रसाद और अज्ञेय करते हैं। लेकिन जो पूर्वप्रदत्त विचार या प्रचलित भाव–सरणियाँ हैं उनको सुगम बनाकर सबके कंठ में बसा देते हैं। जीना यहाँ मरना यहाँ, इसके सिवा जाना कहाँ, या उस देश में तेरे परदेश में सोने चाँदी के बदले में बिकते हैं दिल जैसे भाव–विचार आज भी प्रासंगिक पर विरल हैं और आज भी धार्मिक बोध और पूँजीवाद की साहसिक आलोचना हैं। क्या आज की फ़िल्मों या सीरियल में ऐसे विचारों के लिए कोई जगह बची हो सकती है? शैलेन्द्र और उनके समकालीन गीतकारों ने यह किया और अपने समय और समाज को भावनात्मक रूप से परिवर्तनकारी शक्तियों के पक्ष में तैयार किया। लोकप्रिय या पॉपुलर कलाओं के इस पक्ष और भूमिका पर विचार की जरूरत है और पूछना ज़रूरी है कि क्या आज पॉपुलर कलाओं के मूल्य वही हैं, जो तब थे? पॉपुलर कलाओं के साथ एक ख़ास बात ये है कि ये सीधे सीधे सत्ता और शासक वर्गों के मूल्यों से प्रभावित होती हैं और उनको प्रचारित करती हैं। खुद

राजकपूर की फ़िल्मों में आए बदलावों के ज़रिए और फ़िल्मी गीतों के बनाव–चरित्र में आए बदलावों से इसे समझा जा सकता है। शैलेन्द्र का हर गीत हम में स्वाधीनता, आत्मसम्मान और लोगों से, जीवन मात्र से गहरे प्रेम के भाव जगाता है। जीवन के प्रति ऐसा गहरा, दुर्निवार आकर्षण और हर व्यक्ति, हर स्त्री के लिए, हर कामगार के लिए गहरा आदर हमारे दिल में जगाता है। प्यार का मीठा महासागर। शैलेन्द्र, साहिर, कैफ़ी, मजरूह सबने यही किया। इन गीतों ने हम में अनन्त लालसा जगायी, हमें प्रेम करना और ठगे जाना, और हार कर बर्दाश्त करना भी सिखाया –तू आ के चली छम् से ज्यों धूप के दिन पानी.. या, रस्ते में हो गयी शाम किसी से हाय दिल को लगा के...। इन गीतों को सुनकर हम बेहतर इंसान बने, प्यार करने की ज्यादा ताक़त मिली और जीवन की सुन्दरता को पहचानना सीखा और इन गीतों ने हमें स्त्रियों और ग़रीबों का सम्मान करना सिखाया। आदमी से बड़ा कुछ भी नहीं। रमय्या वस्तावइया आज भी मुझे हिला देता है। यहाँ एक बात जोड़ना जरूरी है कि इन गीतों के पीछे बाहरी संगीत की भी ताक़त है जो लगातार गीतों के शब्द और वाक्यों को विस्तार तथा सहारा देते एक आकाश बनाते चलते हैं। ये गीत हम तक केवल शब्द–रूप में नहीं आए, बल्कि साज–बाज और लयकारी और सुन्दर कंठ में आए।बचपन में जब मैं फ़िल्में देखने जाता तो हॉल में बिकती गानों की किताब जरूर ख़रीदता जो बाहर पटरी पर भी खूब मिलती थीं ,जिन्हें जब बिना लय के सिर्फ लिखित में पढ़ता तो मजा नहीं आता जबकि वही बोल संगीत के साथ तूफ़ान मचा देता।लेकिन शैलेन्द्र के अधिकांश गीतों में शब्द मुखर और प्रमुख रहते हैं और संगीत के बाहर से भी हमें आवाज़ देते हैं।

अपने बचपन और किशोरावस्था में एक दो नारे अक्सर सुनने में आते थे– **हर ज़ोर ज़ुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है,** तथा **'जो चाल चलेगा हिटलर की, हिटलर की तरह मिट जाएगा।** बाद में जाना ये शैलेन्द्र के गीत हैं। इसी तरह, **तू ज़िन्दा है तू ज़िन्दगी की जीत में यक़ीन कर**, जो इप्टा में आज भी गाया जाता है। तब के बहुत से नारे और तराने जैसे जो हमसे टकराएगा चूर चूर हो जाएगा , या,हम धरती के लाल नया संसार बनाएँगे सामूहिक रचना बन गये थे। शील और निरंकार देव सेवक के गीत, बाद में शलभ जी के भी गीत यह दर्जा प्राप्त करते हैं। यह वह दौर था जब प्रगतिशील लेखक संघ, इप्टा और कम्युनिस्ट आंदोलन मज़बूत था, सोवियत था, चीन की क्रांति थी, देश साम्राज्यवाद को हरा कर अभी अभी आज़ाद हुआ था और पूरी दुनिया में देश आज़ाद हो रहे थे। न केवल शैलेन्द्र बल्कि सारे बड़े कवि इन मूल्यों से अनुप्राणित थे। हिन्दी में शील, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर, सुमन, कन्हैया और अनेकानेक कवि जो लिख रहे थे वैसी ही कविता शैलेन्द्र भी लिख रहे थे; कॉमनवेल्थ, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, शोषण, असमानता और नव–स्वाधीन देश के नेताओं का भ्रष्टाचार और विश्वासघात– ये सब शैलेन्द्र की कविताओं के भी तत्व हैं। कॉमनवेल्थ के विरुद्ध **'मुझको भी इंग्लैंड ले चलो'** को नागार्जुन की **'आओ रानी हम ढोएँगे पालकी'** के साथ रखा जा सकता है। आज पेरिस कम्यून की याद करते हुए शैलेन्द्र की यह कविता ज़रूर याद आती है:

सौ सलाम उस कार्ल मार्क्स को
सौ सलाम पेरिस कम्यून को
जो मरकर भी नहीं मरा है

और कितनी साफ समझ के साथ शैलेन्द्र अमरीकी हुकूमत की चाल को खोलते हैं,लगता है यह आज की बात है:

युक्ति निकाली है हिटलर के भाई ने
कहें कि छेड़ो जंग और बेचो बंदूक

कम्युनिस्ट आंदोलन ने हर भाषा में ऐसे कवियों को जन्म दिया जो बहुत जनप्रिय भी हुए। शैलेन्द्र ने अपनी किताब मराठी शाहिर यानी गीतकार 'मराठी के कामगार साहित्यिक अन्नाभाऊ साठे को' समर्पित की। वे सारे कवि जीवन को बदलने वाले स्वप्नों और संघर्षों से अनुप्राणित थे। क्या आज ऐसी कविता हो रही है या संभव है? क्या आज खुले कंठ से पुकारा जा सकता है:

तू आ कदम मिला के चल
चलेंगे एक साथ हम

आज जब सर्वजन और सर्वहारा मूल्यों का स्थान खंडित, अस्मितामूलक हितों ने ले लिया है तो क्या कोई भी कवि इतने विश्वास और ताक़त से सबको आवाज दे सकता है? आज तो कम्युनिस्ट आंदोलन भी कमजोर है और वर्ग–चेतना का क्षरण तथा अभाव है। फिर भी ये कविताएँ हमारी जातीय चेतना में जीवित हैं। ये महज़ नारा नहीं हैं; अपने जीवन, संघर्षों और आंदोलनों से उपजे जीवन–सत्य हैं जिन्हें वही लिख सकता है जिसका खुद का जीवन वैसा हो और वैसी ही प्रतिबद्धता हो। इनमें सामूहिक बल और महान आदर्शों का निवास है।

इसी तरह क्या आज धर्म और रूढ़ियों पर ऐसा वार करके कोई बच सकता है:

राह देखते श्री लक्ष्मी के
शुभागमन की
बरबस आँख मुँदी निर्धन की
मिट्टी के लक्ष्मी गणेश
गिर चूर हो गये

हम बहुत मोह और लालसा से उन वक्तों के बारे में सोचते हैं जब कवि सबकी ओर से बोल सकता था और जिसके साथ पार्टी थी, आंदोलन था और एक स्नेह–आतुर जन समूह था। वे दिन बीत गये। शायद फिर आवें।

शैलेन्द्र की सारी कविताओं का प्रकाशन तो ज़रूरी है ही, उनके फिल्म–गीतों का संकलन भी ज़रूरी है जैसे साहिर का हुआ है। इन्द्रजीत जी से ही हमारी उम्मीद है। 'इश्क़, इंकलाब और इंसानियत' के इस कवि को हर पीढ़ी बार–बार पढ़े, इसके लिए यह जरूरी है।

आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था - मुकेश

मुकेश! मुकेश! आखिरी अल्फ़ाज यही थे तुम्हारे। मैं तुम्हारी बगल में बेबस लाचार की तरह बैठा था। शैलेंद्र मेरे जिगरी दोस्त ,मैं देखता ही रह गया और तुम होश खो चुके थे। कानों में तुम्हारी पुकार गूंज रही थी, अब भी जागते –सोते तुम्हारी आवाज महसूस करता हूँ तो हड़बड़ा उठता हूँ, चौंक जाता हूँ। हजार कोशिश करूं लेकिन सच को झुठलाया नहीं जा सकता। क्या सचमुच ही तुम चले गए? अभी तो तुम्हारे जवानी के दिन थे। इतनी जल्दी भी क्या थी? हमसे रूठने का कारण तो बता जाते।

अजीब दुनिया है यह! एक जीता – जागता, हँसता–खेलता आदमी हमारे बीच से हमेशा –हमेशा के लिए गायब हो जाता है, फिर भी यह चलती रहती है, फर्क नहीं आता, यह वैसी की वैसी ही चलती रहती है। शैलेन्द्र चले गये, फिर भी फ़िल्म –उद्योग चलेगा, फिल्में बनती रहेंगी। लेकिन एक बात निश्चित है कि आज से दस साल बाद या सौ साल बाद भी जब कभी फ़िल्म गीतकारों की बात उठेगी, तब शैलेन्द्र का नाम इज्जत के साथ लिया जायेगा। उनके गीत तो दुनिया भर में मशहूर हो गये थे। क्या इन गीतों को कोई भुला सकता है– "आवारा हूँ "; जिस देश में गंगा बहती है" "मुझे तुमसे कुछ भी न चाहिए" ... आदि। मैं उन्हें उस दिन से जानता हूँ जब वे फिल्मों में आये थे। उनका व्यतिव कुछ निराला ही था। वे बैठते भी अपने ही तरीके से थे, सिगरेट पीने की अदा भी उनकी अपनी ही थी, हँसने मुस्कराने में भी शैलेंद्र, शैलेन्द्र ही थे। कभी भूलकर भी उस भोले, निश्छल, अद्भुत कलाकार ने किसी की बुराई नहीं की। वे जब'; तीसरी कसम" बना रहे थे, तब हम दोनों बहुत ही नज़दीक आ गये। हम एक साथ उठते–बैठते और इस फ़िल्म से संबंधित हर मसले पर विचार करते, कोई समस्या आ जाती तो उसे एक साथ मिलकर दूर करने की कोशिश में लग जाते। फ़िल्म बनाने का काम उनके लिए बहुत ही कठिन था। आदमी की अच्छाईयों व ईमानदारी पर अगाध आस्था होने के कारण फ़िल्म व्यवसाय की ऊंची–नीची घाटियों की वे उपेक्षा कर बैठे। इस कलाकार से व्यापार की पहेली सुलझने के बजाय उलझती गईं। दरअसल उन्होंने अपने सिर पर एक ऐसा बखेड़ा मोल ले लिया था जो उनके स्वभाव के विपरीत था। लेकिन फिर भी व्यापार संबंधी समस्याएं एक–एक करके सुलझती गयीं। इसके लिए श्री राजकपूर का दिली सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। सभी कुछ सामान्य हो चला था कि 13 दिसंबर को शंकर जी ने टेलीफोन पर कहा – "हमारे शैलेन्द्र की तबीयत ठीक नहीं है।" बम्बई की जनता उस वक्त क्रिकेट मैच की ओर उमड़ रही थी। हम शैलेन्द्र जी के घर खार की ओर दौड़े। उस समय शैलेंद्र को देखते ही मैं थोड़ा चौंका। हाथ–पांव फूले हुए। बहकी –बहकी सी बातें। कुछ अजीब सी हालत बना रखी थी। हम काफी देर उनके पास बैठे। रात आठ बजे मैं अपने घर पहुंचा तो मालूम पड़ा कि शैलेन्द्र अस्पताल में भर्ती हो गये हैं और उन्होंने मुझे याद किया है। मैं अस्पताल चला गया। वहाँ देखता हूँ कि चार –पांच आदमी उन्हे पकड़े हुए हैं और वे भागने की कोशिश कर रहे हैं। मुझे देखा तो उनके चेहरे पर थोड़ी खुशी, थोड़ी तसल्ली महसूस हुई। बेचैनी भी घटी। मैंने बड़े प्यार से उनके कंधे पर हाथ रखा और पलंग पर लिटा दिया। वे बहुत ही ज्यादा थके हुए लग रहे थे।

कुछ देर बाद डॉक्टर साहब आये फिर घर जाते समय रास्ते में उन्होंने मुझे बताया कि इस बीमारी से उनका बचना मुश्किल है। मैं घर पहुंचा। सोने की काफी कोशिश की, मगर नींद नहीं। आयी। बहुत देर हों गयी। नींद आती भी कैसे! दिल की बेचैनी इस ख्याल के घने होते जाने से बढ़ती गयी कि कि मेरा बरसों पुराना अजीज दोस्त शायद कल नहीं रहेगा। रात भर मैंने बार –बार उठकर अस्पताल टेलीफोन किया, तबीयत पूछी। जैसे तैसे सुबह हुई। सुबह एक नई उम्मीद लेकर आयी। फोन पर मालूम पड़ा कि अब उनकी तबीयत पहले से अच्छी है। मैंने अपने आपको बहुत बुरा भला कहा, मन ही मन कोसा कि रात को मैं अपने दोस्त के लिए किस–किस किस्म के ख्याल अपने मन में पाल रहा था! मुझे वैसा नहीं सोचना चाहिए था।

क्रिकेट मैच में जाने से पहले बारह बजे अस्पताल फोन किया तो पता चला कि वे सो रहे हैं। जौहर साहब के साथ खाना खाकर जा रहा था कि रास्ते में खबर मिली कि शैलेंद्र की तबीयत ज्यादा बिगड़ गयी है। मैं अस्पताल पहुंचा। उस वक्त वे ऑक्सीजन गैस पर थे। ग्लूकोज़ और खून दिया जा रहा था। डॉक्टर ने उनकी हालत बतायी तो मैं फूटकर रो पड़ा। उनके परिवार का ख्याल आया। मन मे थोड़ी हिम्मत बांधी और अपने आपको संभालकर बाहर आया। बच्चे असहाय भाव से ताक रहे थे। खाने के बहाने मैंने उन्हें बाहर भेज दिया। भाभी (श्रीमती शैलेन्द्र) वहीं थीं। उन्होंने पूछा कि मैं रो क्यों रहा हूँ? उनकी तबीयत तो ठीक है ना?उस वक्त, मैं उन्हें क्या बताता कि अंदर क्या हो रहा है और क्या होने वाला है। मैं कभी रूम के अंदर जाता कभी बाहर आता। मन मे सिर्फ एक उम्मीद कर रहा था कि एक चमत्कार हो जाये और शैलेन्द्र बच जाये। मगर नहीं, विधाता की कुछ और ही इच्छा थी। सब कुछ करते हुए भी दोपहर तीन बजे उनकी सांस टूट गयी। वे इस दुनिया के

रिश्ते–नाते तोड़कर चले गए।

कई लोग कहते हैं कि कविराज पीने से मरे, कुछ लोगों का ख्याल है कि उनको कर्ज की फिक्र ने मार डाला और इसी किस्म की बातें लोग बनाते हैं। शैलेन्द्र जी को पीने का शौक जरूर था, लेकिन वे इतने लापरवाह नहीं थे कि जानते हुए कि पीना उनके लिए बुरा है, पीते। कर्जदारियां जरूर थी, मगर मांगनेवालों के दिल मे भी शैलेन्द्र के लिए प्यार था, मुहब्बत थी। वे यही कहते थे कि लेन–देन दुनिया मे चलता आया है और चलता रहेगा। फिर किस गम ने उन्हें मारा?

हिन्दू शास्त्रों के हिसाब से कहा जाता है कि अगर कोई लेन–देन बाकी रह जाये तो अगले जन्म में फिर मुलाकात होती है। तो मैं अपने को बहुत भाग्यशाली समझता हूं क्योंकि उनके बाकी सब कर्ज तो चूक जाएंगे लेकिन उन्होंने मुझे एक मोंट ब्लैंक पेन देने का वादा किया था। उसके लिये उनसे जरूर मिलना होगा और उस रोज मैं उनसे पूछूंगा कि मेरे यार, आखिर कौन सा गम था जो तुम्हे हमसे छीनकर ले गया?जब भी शैलेन्द्र की सूरत उनकी हँसी, बातें याद आती हैं। यही बात दिल में उठती है **"आवारा था, गर्दिश में था, आसमान का तारा था"**

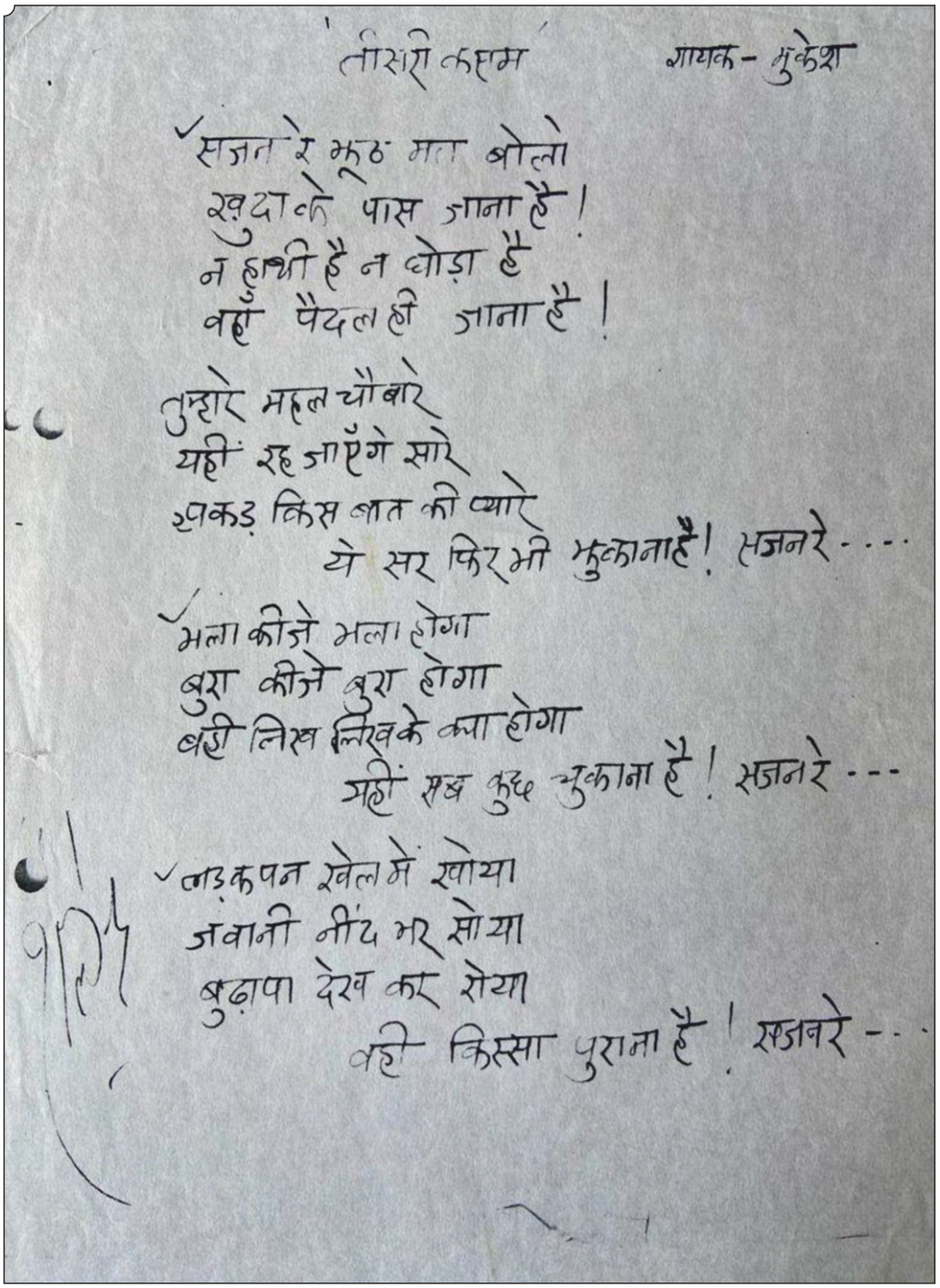

'तीसरी कसम' गायक - मुकेश

सजन रे झूठ मत बोलो
खुदा के पास जाना है!
न हाथी है न घोड़ा है
वहाँ पैदल ही जाना है!

तुम्हारे महल चौबारे
यहीं रह जाएँगे सारे
अकड़ किस बात की प्यारे
ये सर फिर भी झुकाना है! सजन रे....

भला कीजे भला होगा
बुरा कीजे बुरा होगा
बही लिख लिख के क्या होगा
यहीं सब कुछ चुकाना है! सजन रे ...

लड़कपन खेल में खोया
जवानी नींद भर सोया
बुढ़ापा देख कर रोया
वही किस्सा पुराना है! सजन रे...

याद न जाए बीते दिनों की

अमला शैलेन्द्र मजूमदार
(गीतकार शैलेन्द्र जी की बड़ी बेटी, दुबई में निवास)
ईमेल– mazumdar.amla@gmail-com

हम सभी पांच भाई–बहन अपने पिता को बाबा के रूप में संबोधित करते थे। "कहते है ज्ञानी, दुनिया है फानी" जैसा दर्शनपरक गीत लिखने वाले मेरे बाबा ने 14 दिसंबर 1966 को जब इस फ़ानी दुनिया को अलविदा कहा तो मेरी उम्र महज़ 12 साल से थोड़ी कम थी। एक सेलिब्रेटी पिता के बारे में लिखना सचमुच आसान नहीं है, जिसे केवल बचपन में ही देखा हो। जब मैं मशहूर पिताओं के बेटे–बेटियों के बारे में सोचती हूं कि उनके पास बढ़ती उम्र और युवावस्था के दौरान अनगिनत यादें साझा करने को होती है। यह आम धारणा है कि हमारी सोच और समझ परिपक्वता के साथ साथ बेहतर होती जाती है। क्या ये धारणा मेरे लिए भी सत्य हैं? कतई नहीं। वास्तव में, मेरे बाबा की मृत्यु ने मुझे एक तरह से जुनूनी बना दिया।

एक ओर बचपन में अपने बाबा के साथ बिताए पलों की खूबसूरत मधुर यादें और दूसरी ओर उनके अनमोल –अनगिनत गीतों का खज़ाना जिसने मुझे उनके साथ जुड़ने, उन्हें जानने और समझने का जरिया दिया। **"याद न जाए बीते दिनों की"** उनका लिखा गीत मुझे उनकी यादों से जोड़े रखता है। उनकी यादों को रोजाना डायरी में लिपिबद्ध करके उन्हें अमिट बनाने में मुझे बहुत मदद मिली। बाबा की यादों के सागर में बार बार डूबना और आंसुओं में नहाना यही शगल बन गया। जीना आसान नहीं था। बाबा की शून्यता ने हर पल मेरे जीवन को आहत किया। जीवन में अकेलापन और सूनापन छा गया। बाबा के निधन के साथ ही धीरे – धीरे उनके दोस्तों और रिश्तेदारों की गैर मौजूदगी और भी आहत कर रही थी। जिन पर हम विश्वास करते थे, जिनके प्यार, स्नेह और अपनेपन पर हम नाज़ करते थे, अचानक एक रात में ही धूमिल हो गया। ऐसा अनुभव ज़िन्दगी का हिस्सा बनने लगा। एक घटना जिसे मैं कभी भूल नहीं सकती कि एक औरत जो हमारे घर फल बेचने आती थी, नौ गज की साड़ी में सजी हुई जिसकी नाक की नथ उसकी सुन्दरता को और भी बढ़ाती और मुझे बहुत लुभाती थी। उसका काले और सुनहरे मोतियों वाला मंगलसूत्र हमेशा चमकता रहता था। उसकी खार इलाके में अपनी दुकान थी लेकिन वह हमारे बाबा की संभ्रांत छवि के कारण हमें घर आकर फल बेचने को तैयार रहती थी। हर बार वह हमें एक खास फल हमारे हाथों में प्यार और दुलार से रखती थी। उसके इस प्यार पर हम बलिहारी थे। बाबा के न रहने से वह फल वाली भी गायब हो गई। बाबा के गुजरने के कुछ महीनों के बाद मेरी मां ने मुझे खार बाज़ार में फल और सब्जियां खरीदने भेजा, मैं उसी फल बेचने वाली महिला की दुकान पर पहुंची। वह महिला सुंदर साड़ी में, नथ और मंगलसूत्र के साथ हमेशा की तरह आकर्षक लग रही थी। मैंने सोचा मुझे देखकर वह मुस्कुराएगी, और कूदकर मुझे गले लगाकर अपनी भली आदत के अनुसार एक फल मेरे हाथ में रखेगी। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। वह और ग्राहकों के साथ फल सब्जी बेचने में व्यस्त थी। उसने देखकर भी अनदेखा किया। उसकी इस उपेक्षा और रूखे व्यवहार ने मन को बहुत चोट पहुंचाई। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से बाबा की कमी का दुखद एहसास और भी गहरा हो गया था। मैंने इस दुख भरी दास्तां को मां के साथ साझा नहीं किया। यही सोचती रही कि ज़िन्दगी में शायद ऐसे और कितने तल्ख अनुभव से गुजरना होगा। लेकिन बाबा के लिखे इस कालजई गीत ने मुझे हिम्मत और हौसला दिया –

"भीख में जो मोती,
लोगे या न लोगे?
ज़िन्दगी के आंसुओं का
बोलो क्या करोगे?
भीख में जो मोती मिले,
तो भी हम न लेंगे,
ज़िन्दगी के आंसुओं की
माला पहनेंगे,
मुश्किलों से लड़ते भिड़ते
जीने में मज़ा है
नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी
मुट्ठी में क्या है।"

प्रारंभिक जीवन –

मैंने अपने बाबा का एक इंटरव्यू पढ़ा था जिसमें उन्होंने जिक्र किया था कि उनका जन्म मरी, रावलपिंडी (जो अब पाकिस्तान में है) में 1923 में हुआ। उनका प्रारंभिक बचपन यही बीता। उनके पिता यानि मेरे दादा जी सुबह स्नान करते समय भक्ति रस के गीत गाते थे और हमारी दादी भी चक्की पीसते हुए और घर में काम करते हुए गाती थी –"हँस पूछे जनकपुर की नार – नाथ कैसे गज के फंद छुड़ाए।" भोर में जागने और भक्ति रस से सराबोर गीतों को गाने की आदत हमारे बाबा ने अपने माता –पिता से सीखी। बाबा की प्रारंभिक प्राथमिक शिक्षा रावलपिंडी के उर्दू मीडियम स्कूल में हुई। बाबा हमारे बचपन में अपने बचपन की प्रारंभिक क्लास में प्राप्त उर्दू के अक्षर ज्ञान "अलिफ, बे" आदि को भाव भंगिमा के साथ मनोरंजक तरीके से सुनाते और हमें हंसाते। जब हमने स्वयं नर्सरी क्लास में राइम को स्वयं भाव भंगिमाओं के साथ हाथ, पैर हिलाते डुलाते सीखा तब उस समय अपने बाबा की दिलचस्प बातें याद आती रही। बाबा की क्लास में एक बच्चे की शिक्षक ने बेंत से इतनी अधिक पिटाई की कि उस डर से बाबा ने स्कूल जाना छोड़ दिया। बाबा, हम भाई बहनों को यह अक्सर बताते कि मरी, रावलपिंडी में सेना की परेड देखना उन्हें कितना भाता था। यह महज एक संयोग था कि मुसे एमिरेट्स में नौकरी के दौरान एक बार इस्लामाबाद जाने का अवसर मिला। पाकिस्तान स्वतंत्रता दिवस का सैनिक परेड / वायु सेना का अभ्यास मैंने अपने एमिरेट्स के कार्यालय की खिड़की से देखा। उस रोमांचक परेड को देखकर मुझे यह एहसास हुआ कि 8–9 वर्ष के बालक शैलेन्द्र को यह परेड देखकर कितना आनंद और रोमांच का अनुभव होता होगा। उस दिन मैं अपने बाबा के जीवन के आनंदमय अनुभव को फिर से जी रही थी। शायद पुनर्नवा इसी को कहते हैं। मरी, एक हिल स्टेशन है जहां सैनिकों की छावनी भी है। अपने पिता की यादों में रची– बसी "मरी" (रावलपिंडी) की पहाड़ियों की यात्रा का आनंद भी मैंने उठाया। मेरे लिए "मरी" की यात्रा जीवनदायक और तीर्थस्थान के समान पावन और दिव्य आनंद से भरपूर थी। क्योंकि यह पावन जगह मेरे बाबा की जन्मस्थली है।

जहां तक मुझे याद है कि मेरे दादाजी मरी, रावलपिंडी में सेना की कैन्टीन में कार्यरत थे। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण दादाजी को नौकरी छोड़नी पड़ी और सपरिवार 1933 या 1934 में मथुरा आ गए। मथुरा में दादाजी के बड़े भाई रेलवे में नौकरी करते थे, इसीलिए मथुरा जाना उन्होंने मुनासिब समझा। मुझे मालूम हैं हमारी जड़ें बिहार से जुड़ी है। हमारे दादा – परदादा बिहार में ही पले बढ़े। लेकिन हमारे बाबा कभी कभार एक आध बार छोड़ दें तो तो वह बिहार नहीं गए। भोजपुरी उन्हें विरासत में मिली थी और जब हमारे सगे संबंधी हमारे बाबा से भेंट करने आते तब उनसे वह भोजपुरी में बतियाते। मातृभाषा भाषा में बतियाने का जो रस और सुख है वह दूसरी भाषा में कहाँ होता है?यद्यपि ब्रजभाषा और हिन्दी के कारण उनका भोजपुरी बोलने का अभ्यास भी कम हो गया था लेकिन भोजपुरी फिल्म **"गंगा मैया तोहे पियरी चढ़हैबों"** के संगीतकार चित्रगुप्त जी से बातचीत, बाबा भोजपुरी भाषा में करते थे। इस फिल्म में उन्होंने भोजपुरी भाषा में पहली बार गीत लिखे थे। फिल्म भी हिट हुई और इसके गाने भी लोकप्रिय हुए।

मथुरा का जीवन – बंगालियों से नाता

हम सभी भाई बहन यह जानते हुए बड़े हुए कि हमारी दो बुआएं है (दोनों, बाबा की मुंहबोली बहनें लेकिन हमारे लिए वे सगी जैसी थी) छोटी बुआ जिन्हे हम शीला आंटी कहते थे, बांद्रा में रहती थी, उन्होंने ही मेरा और मेरी छोटी बहन गोपा का एडमिशन "सेन्ट जोसेफ़ कानवेंट" बांद्रा में करवाया था। उनका घर वहाँ से पाँच मिनट की दूरी पर था। यह वही स्कूल था जिसमें शीला आंटी स्वयं पढ़ी थी और इसी स्कूल में रिंकी आंटी (प्रसिद्ध फिल्मकार बिमल राय जी की बेटी) भी पढ़ी थी। हिना रानी दत्ता (बड़ी बुआ) को हम बाबा की बड़ी बहन समझते थे। मेरे बाबा और मम्मी उन्हें आदर से हिना दीदी बुलाते थे। धीरे– धीरे हम भी उन्हें हिना दीदी पुकारने लगे।

अब मैं मथुरा की बात करुँ, मथुरा पहुँचकर हमारे दादा जी ने बाबा को सरकारी स्कूल में दाखिल करा दिया। स्कूल में उन्हें प्रतिभाशाली छात्र के रूप में बड़ी पहचान मिली। उस स्कूल के प्राचार्य एक बंगाली सज्जन दत्ता साहब थे। हिना दीदी इन्ही प्राचार्य महोदय की छह संतानों में से सबसे बड़ी बेटी थी। बाबा भी जल्दी ही इस परिवार का एक अभिन्न हिस्सा बन गए। हिना दीदी अपने छोटे भाई देबब्रत के साथ साथ बाबा को भी उतना प्यार और संरक्षण देती। देबब्रत और बाबा एक ही क्लास में थे। बाबा हमें बताते थे कि किस तरह हिना दीदी अपने टिफिन से भोजन बचाकर उन्हें खिलाती थी। हिना दीदी और उनके पिता, हमारे बाबा की पढ़ाई को निर्विघ्न बनाने के लिए बाबा को किताबें, कॉपियाँ और पेंसिलें प्रदान करते थे। बाबा अपने माता–पिता और चार सगे भाइयों, एक

बहन और एक सौतेले बड़े भाई के साथ अपने ताऊ जी के घर पर रह रहे थे। आर्थिक परेशानियों से परिवार परेशान था। बाबा की प्रतिभा और परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि उन्हें स्कूल से छात्रवृति मिलने लगी। अब उन्हें अपनी पढ़ाई – लिखाई के लिए घर से मदद लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। हिना दीदी और उनका परिवार और शीला आंटी का परिवार हमेशा हमारे परिवार के साथ जुड़ा रहा।

फेसबुक की मेहरबानी से अचानक बाबा के एक और दोस्त विनय कुमार जैन से मिलने और बाबा के बचपन की यादों को जानने समझने का सुनहरा मौका मिला। 14 साल पहले मैं कैंसर की बीमारी का शिकार हुई। इलाज चला और ठीक हुई। 2016 में रूटीन जांच के दौरान अस्पताल में अपनी बारी की प्रतीक्षा के दौरान मुझे आलोक जैन का फेसबुक पर संदेश मिला कि "क्या आप शैलेन्द्र जी की बेटी है?" अक्सर अपरिचित लोगों के जवाब देने में मुझे संकोच होता है लेकिन इस चिंता और तनाव की घड़ी में मैंने उन्हें जवाब "हाँ" लिखा और जब आलोक जैन ने मुझे सूचित किया कि उनके पिता श्री विनय कुमार जैन और शैलेन्द्र जी मथुरा में सहपाठी थे और लगभग नौ साल साथ – साथ पढ़ाई की, इस खुशखबरी ने मेरी बीमारी की चिंता को भी भुला दिया। मैं आलोक जैन के घर दिल्ली में विनय अंकल से मिलने गई। विनय अंकल ने बाबा के अनेक किस्से साझा किए। उनके लिखे खत दिखाए, फोटोग्राफ दिखाए। इस मुलाकात ने कितनी खुशी दी, इसे शब्दों में बयां करना मुश्किल है। विनय अंकल ने ही बताया की आर्थिक मजबूरी के चलते ही वह अपनी 12 वीं की पढ़ाई छोड़कर रेलवे में पाँच वर्षीय अप्रेंटिसशिप के लिए आवेदन करना चाहते है लेकिन आवेदन करने के लिए पैसे नहीं है। विनय अंकल ने अपने पिता से आवेदन फार्म की फीस जमा करवाई और बाबा ने इसी शर्त पर पैसे लिए कि वह जब पैसे लौटाएंगे तो उनके पिता को यह पैसे वापस लेने पड़ेंगे। ("भीख में जो मोती मिले लोगे या न लोगे" जैसे स्वाभिमानपरक और कर्मवाद का संदेश देने वाले गीत की रचना कहीं न कहीं उनके अपने जीवन से भी जुड़ी हुई थी) बाबा के स्वाभिमान की विनय अंकल के पिता ने भी खूब तारीफ़ की और जब बाबा ने उन्हें पैसे लौटाए तो उन्होंने बाबा की भावनाओं का सम्मान करते हुए वह पैसे वापस ले लिए। बाबा उस परीक्षा में पास हुए और पाँच वर्षीय मेकेनिकल इंजीनयरिंग अप्रेंटिसशिप कोर्स की पढ़ाई में झांसी चले गए। इस पढ़ाई और प्रशिक्षण के दौरान उन्हें कुछ महीने झांसी और कुछ महीने बंबई (अब मुंबई) रहना पड़ता था।

झांसी में रोमांस –

झांसी में बाबा अप्रेंटिसशिप के दौरान हमारे नाना जी घर आते थे, नाना जी झांसी में स्टेशन मास्टर थे। नाना जी के घर बार– बार आने के कारण उनकी चौथे नंबर की बेटी शकुंतला जी को मन ही मन चाहने लगे, यह एकतरफा प्रेम था। हमारे मामाओं को बाबा का घर आना बहुत अच्छा नहीं लगता था लेकिन नाना जी को हमारे पिता यानि हमारे बाबा बहुत पसंद थे। बाबा ने हमारे नाना से, उनकी बेटी शकुंतला जी से विवाह के लिए अपने मन की बात कही। नाना जी राजी हो गए, लेकिन हमारी मम्मी को यह रिश्ता पसंद नहीं आया। पिता की इच्छा का मान रखते हुए मम्मी ने विवाह के लिए हामी भरी। 2 अप्रैल 1948 को मेरी मम्मी शकुंतला जी और उनकी बड़ी बहन शारदा जी (हमारी मौसी) की शादी हुई। शारदा मौसी की शादी एक आर्मी के डॉक्टर के साथ हुई। शारदा मौसी की शादी से सभी खुश थे। हमारी मम्मी बताती है कि उनकी शादी में रिश्तेदारों ने घर के आँगन में पत्थर फेंके और हमारे नाना जी को रिश्तेदारों ने खरी–खोटी सुनाई कि इस लड़के (शैलेन्द्र) से शादी की बजाय लड़की को कुंवे में फेंकना ज्यादा ठीक होता। शादी के बाद बाबा मम्मी को लेकर बंबई चले गए। परेल के एक कमरे वाले सरकारी क्वार्टर में बाबा के साथ रहने की आदत मम्मी ने डाल ली। मेरी मम्मी बहुत सा दहेज –गहने, अच्छे कपड़े अपने साथ लेकर आई थी, बाबा ने मम्मी से कहा –ये दहेज का सामान गहने आदि अपने माता–पिता को वापस लौटा दे और जल्दी ही आर्थिक स्थिति बेहतर होने पर वह उससे भी ज्यादा सामान अपने पैसे से खरीद कर देंगे। मम्मी ने ऐसा ही किया और बाबा ने अपने वायदे को कुछ वर्ष बाद पूरा भी किया। बाबा का मन कविता लिखने और सुनाने में ज्यादा लगता था (फिल्म "जिस देश में गंगा बहती है" में उन्होंने एक गीत में लिखा भी है, "काम नए नित गीत बनाना, गीत बना के ,जहां को सुनाना।" बाबा, भारतीय जननाट्य संघ से जुड़े हुए थे, इसके कार्यक्रम में नियमित हिस्सा लेते थे। मम्मी ने बाबा के दार्शनिक स्वभाव और भुलक्कड़पन का एक रोचक किस्सा सुनाया कि एक बार बाबा, मम्मी को भारतीय जननाट्य संघ के एक कार्यक्रम में ले गए और कार्यक्रम के बाद मम्मी को छोड़ खुद अकेले घर वापस आ गए। मम्मी बंबई शहर में नई थी और उन्हें घर का रास्ता भी नहीं मालूम था, उनकी रोनी सूरत देखकर अभिनेत्री दीना पाठक (उस समय वह दीना गांधी थी) ने मम्मी को आश्वासन दिया कि वह चिंता न करे वह उनके घर छोड़ देंगी। दीना पाठक ने मम्मी को घर छोड़ा। जब दोनों घर पहुंची तो उन्होंने देखा कि शैलेन्द्र जी दरवाजे पर हाथ में सिगरेट लिए हुए शांत खड़े है और दीना पाठक आंटी उनकी इस अशिष्टता के लिए कुछ नाराजगी जाहिर करती, इससे पहले ही शैलेन्द्र जी मुस्कुराते हुए बोले –"मुझे पता था कि आप जरूर शकुन को घर पहुँचा देगी।"

फिल्मों में गीत लिखने की कहानी

कविता लिखना और सुनाना बाबा का शौक भी था और जुनून भी। देश की आजादी के समय अनेक दंगें फसाद हुए। राजकपूर अपने पिता पृथ्वीराज कपूर के साथ एक कार्यक्रम में बाबा को "जलता है पंजाब" कविता सुनाते हुए बहुत प्रभावित हुए और बाबा को अपनी फिल्म "आग" में गीत लिखने का प्रस्ताव दिया। सामाजिक सरोकारों के कवि शैलेन्द्र ने राजकपूर से कहा। "मैं बेचने के लिए गीत नहीं लिखता।" राजकपूर इस जवाब से आहत जरूर हुए। लेकिन अपनी नाराजगी को छिपाते हुए कहा कोई बात नहीं। लेकिन जब भी मेरी जरूरत पड़े। आपका हमेशा स्वागत करूंगा। 1949 में जब माँ का पाव भारी हुआ तो खर्चों की चिंता ने बाबा को राज अंकल के प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ा। इस तरह उन्हें फिल्म "बरसात" में दो गीत "बरसात में तुमसे मिले हम सजन" तथा " पतली कमर है तिरछी नजर है" लिखने का अवसर मिला। "बरसात" फिल्म भी कामयाब हुई, गीत–संगीत भी हिट हुआ और राजकपूर, नर्गिस, शैलेन्द्र ,हसरत, शंकर, जयकिशन और मुकेश भी एक सफल टीम के रूप में स्थापित हो गए। "आवारा" के गीतों की लोकप्रियता ने राजकपूर और शैलेन्द्र को देश–विदेश विशेष रूप से सोवियत संघ में बहुत मशहूर कर दिया।

हम सभी भाई बहन अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। बाबा बहुत प्रसिद्ध हो गए थे उन्हें अनेक साहित्यिक–सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बतौर मुख्य अतिथि बुलाया जाता था। एक साहित्यिक कार्यक्रम में उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर जोर दिया कि "बच्चों की प्राथमिक स्तर की पढ़ाई में हिन्दी पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे हमारे नौनिहाल हिन्दी में भी बात कर सके। "उस कार्यक्रम के बाद वह अपने साहित्यकार मित्रों को घर पर भोजन के लिए ले आए और हम सभी भाई– बहनों को अंग्रेजी में बातचीत करते देख बहुत शर्मिंदा हुए। उन्होंने नियम बनाया कि घर पर सभी हिन्दी में बात करेंगे। उन्होंने हमारे लिए हिन्दी पढ़ाने वाले एक शिक्षक की व्यवस्था की। हिन्दी पढ़ाने वाले पंडित जी धोती कुरता पहनते थे सप्ताह में तीन दिन हमें हिन्दी पढ़ाते थे। बाबा की यह भी सोच थी कि हम मराठी भी सीखे, इसके लिए उन्होंने श्रीमती प्रेमा ओक को मराठी सिखाने की जिम्मेदारी सौंपी। प्रेमा जी ने बड़े प्रेम से हमें मराठी सिखाई और मराठी भाषा में और पारंगत बन सके इसके लिए वह हमें मराठी फिल्में दिखाने ले जाती। फिल्म देखकर मराठी भाषा सीखने का उनका यह फार्मूला वास्तव में बहुत कारगर था। "देव बप्पा" नामक मराठी फिल्म की मार्मिक कहानी मुझे अब तक याद है कि किस तरह एक बच्चा ईश्वर को पत्र लिखता है कि हमारे माता–पिता को वापस धरती पर भेज दो। एक दयालु पोस्टमास्टर भगवान की तरफ से बच्चे को खत का जवाब लिखता है। उस फिल्म देखते समय आँखों से आँसू की धारा बहने लगती थी। बाबा की कालजयी कविताएं और अनगिनत गीत कभी रुलाते हैं, कभी गुदगुदाते हैं, कभी हिम्मत और हौसला अफजाई करते हैं और कभी रहनुमाई करते हैं। महिला दिवस के अवसर पर महिला सशक्तिकरण और नारी विमर्श, औरत के मन की उड़ान का उनका लिखा "गाइड" फिल्म का गीत –"काँटों से खींचकर ये आँचल, तोड़ के बंधन बांधी पायल" कितना प्रासंगिक और सामयिक है?

पंडित नेहरू जी के साथ कवि शैलेन्द्र (1963)

आग और राग के अप्रतिम कवि : शैलेन्द्र

स्मरणः शताब्दी वर्ष (30.8.1923 – 14.12.1966)

– इन्द्रजीत सिंह

जर्मनी के हिन्दी विद्वान लोठार लुत्से ने सिनेमा को भारत का पाँचवा वेद कहा है। भारत में सिनेमा का फलक साहित्य से बहुत बड़ा है। निरक्षरता और गरीबी के कारण भी करोड़ों लोग साहित्य से कोसों दूर हैं। हिन्दुस्तानी जनता के लिए सिनेमा अलादीन के चिराग से कम नहीं है जो उन्हें छोटी आँखों से बड़े हसीन ख्वाब देखने का मौका देता है। करोड़ों सीधे सादे ,भोले–भाले भारतीयों की मनोरंजन की भूख मिटाता है। उनसे हमदर्दी जताता है, उन्हें अपना बनाता है, आग और राग का पाठ पढ़ाता है, गर्दिश में भी आसमान का तारा बनकर जगमगाने की प्रेरणा देता है। उन्हें दुख में मल्हार गाने की ताकत देता है, उनकी अगुवाई और रहनुमाई करता है। जिस तरह फ़िल्में हमारे जीवन का हिस्सा हैं उसी तरह गीत फिल्मों के अविभाज्य अंग हैं। फिल्म की कामयाबी में अच्छे, अर्थपूर्ण, कर्णप्रिय और मधुर गीतों की बड़ी भूमिका होती है।

वड्र्सवर्थ और पंत को प्रकृति का कवि माना जाता है, तुलसी और सूरदास को भक्ति का कवि कहा जाता है, एलियट और मुक्तिबोध को विचारों का कवि कहा जाता है, शैलेन्द्र को आग और राग का, इश्क़ और इंकलाब का और ज़िंदगी और ख्वाब का अप्रतिम जनकवि कहना ज्यादा मुनासिब होगा। 2013 में शैलेन्द्र के कविता संग्रह "अंदर की आग" के लोकार्पण के अवसर पर (शैलेन्द्र के निधन के 47 साल बाद) आलोचना के शिखर पुरुष नामवर सिंह ने सच ही कहा "शैलेन्द्र की कविताएं सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई हैं। वे सही और सच्चे अर्थों में जनकवि थे। "राजकपूर ने शैलेन्द्र को भारत का पुश्किन कहा है।" गीत सृजन की कला में माहिर होने के कारण ही जनकवि नागार्जुन ने उन्हें "गीतों का जादूगर" कहा है। सरल और सहज शब्दों में गहरी बात लिखने के कारण ही फणीश्वर नाथ रेणु उन्हें "कविराज" कहते थे। धर्मयुग के 16 मई ,1965 के अंक में "मैं, मेरा कवि और मेरे गीत" आलेख में शैलेन्द्र ने लिखा "एक बात तो दृढ़ता से मेरे मन में विश्वास बनकर बैठ गई है कि जनता को मूर्ख या सस्ती रुचि का समझने वाले कलाकार या तो जनता को नहीं समझते या अच्छा और खूबसूरत पैदा करने की क्षमता उनमें नहीं है। हाँ, वह अच्छा मेरे लिए बेकार, जिसे केवल गिने चुने लोग ही समझ सकते हैं।"

शैलेन्द्र ही ऐसे पहले वैश्विक गीतकार है जिनके कालजयी मधुर गीतों की अनुगूँज देश की सरहदों के पार सुनाई पड़ी। शैलेन्द्र ने अपने गीतों के माध्यम से हिन्दी भाषा और संस्कृति का परचम दुनिया के अनेक देशों में फहराया। अंग्रेजी भाषा के महान कवि टी एस इलियट के अनुसार –"अच्छी कविता मनोरंजन से अधिक हमारी चेतना का विकास करती है, हमारे संवेदना का परिष्कार करती है।" इलियट की इस कसौटी पर शैलेन्द्र की कविताएं सोलह आने खरी उतरती हैं।

रावलपिंडी में जन्म –

सरल–तरल और सहज भाषा में गहरी बात लिखने वाले कवि गीतकार शैलेन्द्र का जन्म 30 अगस्त 1923 को अविभाजित भारत के रावलपिंडी शहर की सैनिक छावनी मरी (अब पाकिस्तान) में हुआ। शैलेन्द्र के पिता स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण 1933–34 के आसपास नौकरी से त्यागपत्र देकर अपने बड़े भाई के पास मथुरा चले गए। शैलेन्द्र ने कक्षा तीन से कक्षा दस तक की पढ़ाई गवर्नमेंट हाई स्कूल ,मथुरा से पूरी की। शैलेन्द्र की प्रतिभा और परिश्रम का यह सुखद परिणाम था कि वह कक्षा दस की बोर्ड परीक्षा में अपने विद्यालय के प्राचार्य और उप–प्राचार्य के बेटों को पीछे छोड़ते हुए "फर्स्ट क्लास फर्स्ट" का सम्मान हासिल कर सके। आर्थिक मजबूरी के चलते इन्टरमीडिएट की पढ़ाई अधूरी छोड़कर 1942 में रेलवे में पाँच वर्षीय अप्रेन्टिस कोर्स के लिए बंबई चले गए।

शमशेर बहादुर सिंह के कारण मुंबई में कविता पाठ का अवसर –

कविताओं में संवेदना और सृजन का राग, प्रतिरोध और प्रतिबद्धता की आग और समानता, स्वतंत्रता तथा सद्भावना से परिपूर्ण समाज के हसीं ख्वाब के प्रबल समर्थक शैलेन्द्र को 16 अगस्त 1947 में बंबई के एक कवि सम्मेलन में "दूसरा सप्तक" के प्रमुख कवि शमशेर बहादुर सिंह के कारण शैलेन्द्र को पहली बार एक बड़े मंच पर कविता पाठ का मौका मिला। उन्होंने 1947 में रचित **"इतिहास"** कविता सुनाकर श्रोताओं को अपना मुरीद बना लिया। इस घटना का उल्लेख उन्होंने जून 1963 के "धर्मयुग" पत्रिका में प्रकाशित एक लेख "आता है याद मुझको" में किया हैं। शैलेन्द्र लिखते हैं –"कवि सम्मेलन के अध्यक्ष थे श्री पृथ्वीराज कपूर और ख्वाजा अहमद अब्बास संचालन कर रहे थे। अंत समय में भाई शमशेर ने अपना नाम वापस ले लिया और मुझे हुक्म मिला उनकी

जगह मैं कविता पाठ करुँ। हाल में मैं एकदम पिछली सीट पर बैठा था।
.. ..डरते सहमते हुए मैंने **"इतिहास"** नामक रचना प्रारंभ की। दो– चार पंक्तियों के बाद ही तालियों की गड़गड़ाहट! मैंने सभापति जी की तरफ देखा और प्रश्न किया –"क्या मैं बंद कर दूँ?सभापति ने कहा, "नहीं जनाब! फिर से पढ़िए इन पंक्तियों को।" कुछ और पंक्तियाँ, फिर वहीं तालियों की गड़गड़ाहट! अब तो जैसे मेरे भय की पुष्टि हो गयी कि मैं "हूट" हो गया। लेकिन फिर सभापति का आश्वासन मिला कि मुझे दाद मिल रही है। .. .. बंबई के साहित्य संसार में यह मेरे प्रवेश का पहला दिन था।"

जनकवि शैलेन्द्र –

"इतिहास" कविता जिसने शैलेन्द्र को श्रोताओं का दीवाना बनाया, उसकी आरंभिक पंक्तियाँ काबिल–ए –गौर है–

"खेतों में, खलिहानों में,
मिल और कारखानों में
चल सागर की लहरों में
इस उपजाऊ धरती के
उत्तप्त गर्भ के अंदर,
कीड़ों से रेंगा करते–
वे खून पसीना करते!
वे अन्न अनाज उगाते,
वे ऊँचे महल बनाते
कोयला लोहे सोने से
धरती पर स्वर्ग बसाते
वे पेट सभी का भरते
पर खुद भूखों मरते हैं।"

1948 में शैलेन्द्र ने एक और कालजयी कविता **'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है'** लिखी, सात दशक बीत जाने के बावजूद इस नारा परक गीत की न तो चमक– दमक– धमक फीकी हुई है और न ही इसकी धार कुंद हुई है। शैलेन्द्र का पहला कविता संग्रह 1955 में प्रकाशित हुआ। इस संकलन में उनकी 33 कविताएं संकलित हैं। शैलेन्द्र ने **"स्वांतः सुखाय"** की बजाय **"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय"** के फ़लसफ़े को अपनी कविताओं की आधारभूमि बनाकर जनकवि होने का परिचय दिया–

"लीडर जी, परनाम तुम्हें
हम मजदूरों का,
हो न्यौता स्वीकार तुम्हें
हम मजदूरों का,
एक बार इन गंदी गलियों
में भी आओ,
घूमे दिल्ली–शिमला,
घूम यहाँ भी जाओ!

शैलेन्द्र ने मनुष्यता की रक्षा के गीत गाए। अन्याय, असमानता, उत्पीड़न, शोषण और कुपोषण के अंधेरों के खिलाफ़ हौसलों और उम्मीदों के दीपक जलाए। इसीलिए वह जनकवि कहलाए। उन्होंने प्रेम और उदात्त जीवन मूल्यों की पैरोकारी की। शैलेन्द्र की कविताओं को पढ़कर मन की आँखें खुलने लगती है, निराशा का कुहासा छँटने लगता है, मौन मुखरित होने लगता है, "चुप्पियाँ" अखरने और सुइयों सी गड़ने लगती हैं। स्याह– रात को सुनहरे प्रभात में बदलने का साहस मिलने लगता है और व्यक्ति "ज़िंदगी की जीत में यकीन कर" के मंत्र को आत्मसात करके पूरी शिद्दत, जोश और जुनून के साथ स्वर्ग को धरती पर उतारने की मुहिम में जुट जाता है। अंग्रेजी भाषा के महान कवि टी एस इलियट के अनुसार –"अच्छी कविता मनोरंजन से अधिक हमारी चेतना का विकास करती है, हमारे संवेदना का परिष्कार करती है।" इलियट की इस कसौटी पर शैलेन्द्र की कविताएं सोलह आने खरी उतरती हैं। शैलेन्द्र ने 1950 में आशा, उत्साह और आत्मविश्वास से लबरेज एक ऐसे गीत की रचना की जिसकी अनुगूँज 72 साल बीत जाने के बाद भी सुनाई पड़ती है।

"तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी
की जीत पे यकीन कर,
अगर कहीं है स्वर्ग तो
उतार ला जमीन पर!"

गीतों के जादूगर : शैलेन्द्र –

16 अगस्त 1947 के कवि सम्मेलन में अभिनेता राजकपूर भी मौजूद थे। शैलेन्द्र की कविता को सुनने के बाद राजकपूर ने अपनी फिल्म "आग" में गीत लिखने का निमंत्रण दिया, जिसे जनकवि शैलेन्द्र ठुकरा दिया। अप्रैल 1948 में शैलेन्द्र की शादी हो गई। पत्नी शकुंतला जी का जब पैर भारी हुआ और उन्हें मायके भेजने के लिए पैसों की जरूरत पड़ी तो उन्हें राजकपूर का प्रस्ताव याद आया। शैलेन्द्र, राजकपूर के पास पहुंचे और पाँच सौ रुपये की मांग की। राजकपूर, शैलेन्द्र की प्रतिभा को पहचानते थे। उन्होंने शैलेन्द्र को पाँच सौ रुपये दिए। शैलेन्द्र ने इसके बदले राजकपूर की फिल्म "बरसात" में दो गीत –"बरसात में हमसे मिले तुम" और "पतली कमर है" लिखे। 1949 के अंत में फिल्म "बरसात" प्रदर्शित हुई। फिल्म भी कामयाब हुई और फिल्म के गीतों ने शैलेन्द्र के जीवन में यश और धन की बरसात कर दी। 1951 में राजकपूर की फिल्म "आवारा" प्रदर्शित हुई। इस फिल्म के शीर्षक गीत "आवारा हूँ .. गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ" ने भारत के साथ–साथ रूस और चीन आदि देशों में धूम मचाई। "आवारा" ने राजकपूर को अंतर्राष्ट्रीय स्टार और शैलेन्द्र को ग्लोबल गीतकार बना दिया।

शैलेन्द्र के गीतों में एक तरफ प्रेम का राग सुनाई पड़ता है, वहीं दूसरी ओर संघर्ष, क्रांति और इन्कलाब की आग दिखाई पड़ती है। शब्दों के गागर में भावों के सागर भरने वाले अप्रतिम शब्द शिल्पी शैलेन्द्र ने फिल्मों में अनेक प्रेम और राग के गीत लिखे। **"बंदिनी" फिल्म में" जोगी जब से तू आया मेरे द्वारे मेरे रंग गए सांझ–सकारे, "फिल्म श्री चार सौ बीस में" प्यार हुआ इकरार हुआ है, प्यार से फिर क्यों डरता है दिल" तथा "रमैया वस्तावैया, रमैया वस्तावैया मैंने दिल तुझको दिया"** आदि स्तरीय, अर्थपूर्ण, मधुर और लोकप्रिय गीतों ने

शैलेन्द्र को देश– दुनिया का प्रसिद्ध गीतकार बनाया। "पतिता" फिल्म के गीत "किसी ने अपना बना के मुझको मुस्कुराना सिखा दिया, अंधेरे घर में किसी ने हँस के चिराग जैसे जला दिया।" प्रेम की अनुभूति और अभिव्यक्ति का यह अप्रतिम अंदाज़े बयां शैलेन्द्र की असाधारण काव्य प्रतिभा को उजागर करता है। शैलेन्द्र ने 172 फिल्मों में लगभग 800 लोकप्रिय, मधुर ,स्तरीय और कर्णप्रिय गीत लिखे।

फिल्म श्री चार सौ बीस (1955) में शैलेन्द्र ने "दिल का हाल सुने दिल वाला" गीत में आम आदमी की व्यथा कथा को इतनी करुणा और व्यंग्य मिश्रित भाषा में प्रस्तुत किया है कि इस कालजयी गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ कार्ल मार्क्स के "हुजूर" और "मजूर" की दास्तान आँखों के सामने जीवंत हो उठती है। सामाजिक सरोकार से लबरेज इस गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ काबिले गौर हैं–

"दिल का हाल सुने दिलवाला
सीधी सी बात न मिर्च मसाला
कहके रहेगा कहने वाला।
छोटे से घर में गरीब का बेटा
मैं भी हूँ माँ के नसीब का बेटा
रंजो–गम बचपन के साथी
आंसुओं से जली जीवन बाती
भूख ने है बड़े प्यार से पाला।"

शैलेन्द्र ने करोड़ों हिंदुस्तानियों के साथ–साथ अपनी आपबीती को भी इस गीत में शिद्दत से उकेरा है। साधारणीकरण की दृष्टि से यह गीत सर्वहारा वर्ग की करुण कहानी की अनुपम–अप्रतिम मिसाल है। शैलेन्द्र सरल– सहज शब्दों में आमजन के दिल की बात को आमजन के दिल तक पहुँचाने में अलंकारिक भाषा के पचड़े में नहीं पड़ते। उनके गीत न केवल संवेदनाओं के क्षितिज का विस्तार करते हैं बल्कि भाव बोध का परिष्कार भी करते हैं। शैलेन्द्र की साहित्यिक प्रतिबद्धता का "उजाला" फिल्म का यह गीत काबिले–गौर है।

"सूरज जरा ! आ पास आ
आज सपनों की रोटी
पकायेंगे हम
अय आस्मां ,तू बड़ा मेहरबां
आज तुझको भी दावत
खिलायेंगे हम
चूल्हा है ठंडा पड़ा और
पेट में आग है
गर्मा गरम रोटियाँ कितना
हसीं ख्वाब है . .।"

शैलेन्द्र ने यह गीत आज से छह दशक पहले लिखा था लेकिन आज भी हिंदुस्तान की एक तिहाई आबादी का गर्मा गरम रोटियों का हसीन ख्वाब साकार नहीं हुआ है। कलात्मकता, मार्मिकता और प्रगतिशीलता की कसौटी पर यह गीत चौबीस कैरेट खरा है। "किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार" (अनाड़ी) गीत भारतीय दर्शन और संस्कृति को जानने और समझने का मूल मंत्र है।

तीसरी कसम फिल्म का निर्माण–

शैलेन्द्र ने कथाकार रेणु की अमर प्रेम कहानी "तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफ़ाम" पर आधारित फिल्म "तीसरी कसम" का निर्माण कर साहित्यिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया। कथा, पटकथा, अभिनय, गीत और संगीत की दृष्टि से बेहतरीन होने के बावजूद फिल्म फ्लॉप हो गई। इसका एक गीत– "सजनवा बैरी हो गए हमार" गीत रेणु को सबसे अधिक पसंद था। उन्होंने 17 जून 1966 को अपने गाँव के एक साथी बालगोविंद विश्वास को बंबई से एक पत्र लिखा– **"..तस्वीर मुकम्मिल हो गई है और भगवान की दया से ऐसी बनी है कि वर्षों तक लोग इसे याद रखेंगे। अपने मुँह अपनी तारीफ़ नहीं– कोई भी व्यक्ति यही कहेगा। "सजनवा बैरी हो गए हमार" तो ऐसा बन गया है कि पुराने "देवदास" के "बालम आए बसो मोरे मन में" की तरह युगों तक गाया जाएगा। मैं ही नहीं, कई लोग ऐसे हैं जो इस गीत को सुनकर आँसू मुश्किल से रोक पाते हैं।"** (रेणु रचनावली– 5 सं. भारत यायावर, पृष्ठ 599)। शैलेन्द्र ने रेणु जी की अमर कहानी की आत्मा की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। 1967 में भारत सरकार ने इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार "स्वर्ण कमल" प्रदान किया।

जनकवि शैलेन्द्र को गुज़रे 56 वर्ष बीत गए हैं लेकिन उनके गीत आज भी कबीर के दोहों, सूरदास और नानक के पदों, तुलसी की चौपाइयों और गालिब के शेरों की तरह सुने और सुनाए जाते हैं। उन्हें तीन बार सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए (यहूदी, अनाड़ी और ब्रह्मचारी फिल्म) "फिल्मफेयर" का अवॉर्ड मिला। डाक तार विभाग ने 2013 में उनपर डाक टिकट जारी किया। रेल मंत्रालय ने अमर कथाकार प्रेमचंद जी की स्मृति में उनके कालजयी उपन्यास "गोदान" के नाम पर "गोदान एक्सप्रेस", महाकवि टैगोर की याद में "गीतांजलि एक्सप्रेस", तथा जयशंकर प्रसाद जी के सम्मान में उनकी विश्व विख्यात कृति "कामायनी" के नाम पर "कामायनी एक्सप्रेस" चलाकर सराहनीय और अभिनंदनीय कार्य किया है। सुप्रसिद्ध शायर कैफ़ी आज़मी की याद में "कैफ़ियत एक्सप्रेस" को चलाना काबिले तारीफ़ कदम है। शैलेन्द्र जी ने भारतीय रेल में लगभग 10 वर्ष तक अपनी अमूल्य सेवाएं दी और उनके स्तरीय, कलात्मक ,मधुर, कर्णप्रिय, अर्थपूर्ण, प्रेरक और कालजयी गीतों ने देश–दुनिया के गीत–संगीत प्रेमियों के दिलों में खास जगह बनाई। यदि भारत सरकार इस वर्ष 2023 में शैलेन्द्र जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर उनकी स्मृति में "दिल है हिन्दुस्तानी" नाम से ट्रेन चलाने की घोषणा करे तो यह निश्चित रूप से सराहनीय और अभिनंदनीय कदम होगा।

Indrajeetrita@gmail.com

रसूल हमज़ातोव : जीवन वृत्त

जन्म– 8 सितंबर 1923 ,दागिस्तान
शिक्षा– दागिस्तान और मॉस्को
प्रकाशित रचनाएं– धधकता प्यार और भड़कती नफरत, गीत पर्वतों के, तीसरी घड़ी, वर्षों की माला, प्यार की पुस्तक, दो शालें, हमारे पर्वत, धरती मेरी, पहाड़ों के गीत, मेरा दिल जल रहा है, सफेद सारस, मेरे दादा पिता से बातचीत और मेरा दागिस्तान सहित 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित
पुरस्कार– राजकीय पुरस्कार, लेनिन पुरस्कार और नेहरू पुरस्कार सहित अनेक सम्मान
निधन: 3 नवम्बर 2003, मॉस्को

कहते है हिंदवासी.....

कहते हैं हिंदवासी कि धरती की कोख ने,
दुनिया में सब से पहले दिया साँप को जनम;
पर्वत[1] के बासियों का का मगर यह ख़याल है, 1कफ़क़ाज़
संसार में उक़ाब ने पहले रखा क़दम।
पर, मेरी अपनी राय में दुनिया में सब से क़ब्ल[1], 1 सर्वप्रथम
इन्सान आए, और फिर आया यह इंक़लाब,
उन में से कुछ ने साँप का चोला पहन लिया,
कुछ धीरे–धीरे बन गए इन्सान से उक़ाब।

उड़ के पँहुचे है राकेट...

"उड़ के पहुंचे है रॉकेट कई मरतबा
दूर तारों औ' अम्बर की ऊंचाई तक
लोगो, लोगों, ए मेरे सितारों मगर
काश, मैं उड़के आ पाऊँ बस तुम तलक।"

धेवती के साथ संवाद

तू क्यों सुबके–रोए बच्ची
तू क्यों सुबके–रोए,
मैं रोऊँ–चिल्लाऊँ बच्ची
मैं रोऊँ–चिल्लाऊँ;

छोड़ मुझे माँ–बाप सिधारे
खड़ी यतीमी हाथ पसारे
तू क्यों सुबके–रोए बच्ची
मैं रोऊँ–चिल्लाऊँ;

जंग में भाई मैं ने खोए
वीर हज़ारों रण में सोए
मैं रोऊँ–चिल्लाऊँ बच्ची
मैं रोऊँ–चिल्लाऊँ;

तू क्यों सुबके–रोए बच्ची
तू क्यों सुबके–रोए!

यह सब सुन के बोली बच्ची
नाना, बात तुम्हारी सच्ची
लिखते–पढ़ते गाते तुम हो
सृजन की दुनिया में गुम हो
मेरी उम्र पड़ी है आगे
क़िस्मत कौन दिशा ले भागे
कुछ भी जान न पाऊँ नाना
कुछ भी समझ न पाऊँ,
बस रोऊँ–चिल्लाऊँ नाना
बस रोऊँ–चिल्लाऊँ
बस रोऊँ–चिल्लाऊँ।

(सभी कविताओं के रूसी से हिन्दी में अनुवाद प्रोफ़ेसर साबिर सिद्दीकी द्वारा)

राष्ट्रपति पुतिन के साथ कवि – लेखक रसूल हमज़ातोव

मेरे अब्बा – रसूल हमज़ातोव

– सलीहत हमज़ातोवा

अब्बा के बारे में संस्मरण लिखना मेरे लिए एक कठिन काम है। इसका कारण मेरा स्वयं पर यह विश्वास न होना है कि मैं उस गहरे और विशाल व्यक्तित्व के आयामों को पूरी तरह से अपने शब्दों में व्यक्त कर पाऊँगी, जो मेरे अब्बाजान का था। उनके बारे में लिखने की कोशिश करते हुए मुझे उनकी ही पंक्तियाँ याद आ रही हैं:

और मेरी कविताओं से ट्रेसिंग पेपर नहीं हटाया जाएगा क्योंकि, उनका रहस्य तो रेखाओं के बीच ही रहेगा।

इसी तरह उनके व्यक्तित्व के पैमाने और उनकी आंतरिक दुनिया की गहराई का चित्रण मेरे इन संस्मरणों से नहीं हो पाएगा। मेरी यह कोशिश उस छोटी खिड़की की तरह है जिससे बाहर फैले सौंदर्य की मात्र झलक देखी जा सकती है, उसकी पूर्ण भव्यता नहीं। लेकिन मैं फिर भी अपने अब्बू के बारे में लिखना चाहती हूँ। क्योंकि यह जो "खिड़की" है उसके माध्यम से मैंने उनके पिता रूप को बेटी की नज़रों से देखा है। मैं यह नहीं कह सकती कि मेरे अब्बू का व्यवहार अन्य लोगों के साथ मुझसे अलहदा था कि नहीं। मेरे लिए मेरे अब्बा उस सूरज की तरह थे जो सब पर अपनी रोशनी बराबर से और पूरी शिद्दत से बरसाता है। माना कि सूरज की तपिश सर्दियों में कम हो जाती है और गर्मियों में बढ़ जाती है, पर वह धूप बाँटते समय लोगों में फ़र्क नहीं करता। इसलिए बेटी के प्रति किसी ख़ास प्यार की अभिव्यक्ति के बारे में मैं नहीं कह सकती; हालाँकि एक ऐसी घटना हुई थी जो मुझे बहुत ठीक से याद भी है। लेकिन उसके बारे में थोड़ी देर बाद बताऊँगी। अब्बा का लोगों के प्रति जो स्नेह था, उसने मेरे मन पर अधिक गहरी छाप छोड़ी है। और वह सचमुच एक अद्भुत भावना थी। मुझे लगता है कि यह भावना एक पारस्परिक प्रभाव पैदा करती थी और इसीलिए जवानी के दिनों में मुझे लगता था कि सभी लोग तेजस्वी, दयालु और नेक होते हैं। अपने अब्बा के व्यक्तित्व के आकर्षण के चलते मेरा ध्यान लोगों की उन कमियों, कमज़ोरियों आदि पर नहीं जाता था, जो दूसरों की नज़रों में आया करती थीं। उनकी सोहबत में सब लोग खुशगवार लगते थे और उन्हें देखकर यह लगता था कि सभी दयालु हैं और अच्छाई में विश्वास रखते हैं। यह भावना लोगों को बदलने का सामर्थ्य रखती थी और सभी के उज्ज्वल पहलुओं का विकास होता था।

अब्बा की यादें मेरी स्मृतियों में कुछ प्रकरणों की तरह दर्ज हैं। उनके असाधारण हास्य, उनके चुटकुलों, उनके मज़ाकिया मिज़ाज आदि के बारे में मैं लोगों से सुनती आयी हूँ जैसे उनका यह कथन "कम्सामोल (युवा कम्युनिस्ट दल) के सदस्य अजीब लोग होते हैं: वे काम तो बच्चों की तरह करते हैं पर पीते वयस्कों की तरह हैं।" यहाँ तक कि अब्बा की शोक सभा में आई एक महिला ने बताया था कि एक बार उनके सम्मान में दागिस्तान के एक विश्वविद्यालय में वॉलीबॉल टूर्नामेंट आयोजित किया गया था। खेल चल रहा था और अचानक गेंद उस हॉल में आ पहुँची जहाँ प्रतिष्ठित लोग बैठे थे और वाइस–चांसलर के सिर पर लग गयी। कुछ देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। आमतौर पर लोग ऐसी स्थिति में ठहाका लगाना चाहते हैं, पर लोग लिहाज़ करके चुप थे। तभी मेरे अब्बा बोल उठे, "देखा, गेंद भी प्रखर बुद्धि सिर ही चुनती है।" और वाईस चांसलर तथा कमरे में बैठे सभी लोग ठहाके लगाने लगे।

अब्बू कभी भी किसी को दुःख पहुँचाने के लिए मज़ाक नहीं करते थे। उनके चुटकुलों से माहौल हमेशा खुशनुमा हो जाता था। मेरे अब्बा बिलकुल वैसे थे जैसा मर्शाक ने इन पंक्तियों में कहा है:

अगर दिमाग़ दयालु बना रहे,
दिल खुद–बखुद अक़्लमंद
हो जाएगा!

मेरे अब्बा का दिल और दिमाग़ कुछ ऐसा ही था। उन्हें अक्सर लोग भाग्य का दुलारा कह कर पुकारते थे। वे समाज में हो रही किसी भी उथल–पुथल के बावजूद हमेशा खुश रहते थे। इन शब्दों में निश्चित तौर से कुछ सच्चाई है। अपने अस्सीवें जन्मदिन के उपलक्ष्य पर हुए आयोजन में उन्होंने खुद यह कहा था कि लोग तो उन्हें एक खुशमिज़ाज इनसान मानते ही हैं, वे स्वयं भी अपने बारे में यही सोच रखते हैं। उन्होंने अस्सी साल लम्बी ज़िन्दगी जी। यानी तीनों दौर –बचपन, जवानी और बुढ़ापा– जीने का मौक़ा उन्हें मिला। अधिकाँश लोगों को इतने वसंत देखने का अवसर नहीं मिलता है। युद्ध और दमन के वर्षों ने लाखों लोगों की जानें ले लीं। वे लोग नामी कवि, वैज्ञानिक आदि भी बन सकते थे। "हमें उन लोगों को याद रखना चाहिए जो उस उम्र से बहुत पहले मर गए जो मुझे मिली है। वे लोग पूश्किन, लेरमंतव जैसे महान कवि बन सकते थे। बहुत सारे लोगों की जवानी की दहलीज़ पर पहुँचते ही मृत्यु हो गयी। मेरे कई दोस्त या तो कम उम्र में शहीद हो गए या मर गए, कइयों के भाग्य ने बहुत कठिन परीक्षाएँ लीं। सभी विपत्तियाँ और दुश्वारियाँ जैसे मेरे बग़ल से गुज़र गयीं। मुझे कलम थमाई गयी और मैं लिखता चला गया..."

लेकिन अब्बा की ज़िन्दगी को मैं बाहरी पर्यवेक्षक की नज़र के परे भी जानती हूँ और इसलिए अक्सर सोचती हूँ, शायद सभी तथाकथित भाग्य के दुलारों की अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ होती होंगी जिन के बारे में हम नहीं जानते। मेरे अब्बा के पास ये कठिनाइयाँ पर्याप्त मात्रा में थीं। क्या यह संभव हो सकता है कि आप लोगों के बीच रहें, उनके नेता होने का दर्जा पाएँ, सत्ता के ऊपरी सोपानों तक पहुँचें और आपके इर्दगिर्द ईर्ष्यालु लोग और निंदक न हों? आपको अपने जीवन में किसी विश्वासघात का सामना न करना पड़े?यह सब मेरे अब्बा ने झेला था, वे कहते थे कि मैंने ज़िन्दगी को उसके हर रूप में देखा है। कुछ लोग, जो उन वर्षों में काफ़ी कामयाब ज़िन्दगी बसर करते थे, अक्सर पीड़ित होने का चोला पहने रहते थे। अब्बा को तथाकथित पीड़ितों के कारण बहुत कुछ सहना पड़ा था, पर उन्होंने कभी भी इसका ज़िक्र नहीं किया। मेरे अब्बा इन गोरखधंधों से दूर रह कर उनसे ऊपर उठने में कामयाब रहे। कई ऐसे लोग थे जो ईर्ष्या के कारण उन्हें हर तरह का नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहते थे। वे इसके लिए सबूतों की तलाश में रहते थे और न मिलने पर उन्हें गढ़ते रहते थे। मिसाल के तौर पर वे ऐसी बातें करते थे – रसूल के पास लगातार यात्रा करने का समय तो होता है पर पार्टी का चंदा भरने के लिए नहीं, उसने अपने पचासवें जन्मदिन पर पार्टी का शुक्रिया तो अदा किया पर लिआनिद ब्रेझनेव का नहीं। इन आरोपों का आधार ईर्ष्या करने वालों को कहाँ से मिला?यह कोई संयोग नहीं है कि अब्बा ने "एक कवि से" के उपसंहार में लिखा है:

अपने पीछे कविताओं
का एक संग्रह
छोड़ कर जाना तुम
न कि गुमनाम शिकायतों
का पुलिंदा

आज शायद जो लोग उनके पचासवें जन्मदिन पर हुए शानदार समारोह की रिकॉर्डिंग देखते होंगे और उनका उत्कृष्ट सम्बोधन सुनते होंगे – "मैंने अपना भाषण लिखा तो है, पर क्या कोई अपने देश, अपनी पार्टी या अपने लोगों को सम्बोधित करते समय काग़ज़ से पढ़कर बोलता है।", उनके लिए यह सोच पाना भी मुमकिन नहीं होगा कि कोई बहुत ध्यान से उनका भाषण सुनकर इस बात को गाँठ बाँध रहा होगा कि अब्बा ने लिआनिद ब्रेझनेव का शुक्रिया अदा नहीं किया। कुछ दिनों बाद रसूल हमज़ातोव को पार्टी दफ़्तर बुलाकर फटकार लगाई जाती है और शुक्रिया अदा न करने के लिए जवाबतलबी की जाती है।

उल्लेखनीय बात यह है कि यही लोग (मेरा संकेत मात्र दो लोगों की तरफ़ है) जब उनकी सारी चालें ग़लत साबित हो जाती हैं, बड़ी आसानी से नए मुखौटे पहन कर यह कह कर माफ़ी माँग लेते हैं कि उनसे भूल हो गयी, या अपने किए से पल्ला झाड़ लेते हैं। मेरे अब्बा ने उन लोगों का कभी अपमान या पर्दाफ़ाश नहीं किया।

मैं जब थोड़ी समझदार हो गयी तब मैंने अब्बा से पूछा था कि उन्होंने कभी भी उन लोगों द्वारा लगाई गयीं तोहमतों, की गईं साज़िशों और मानहानि के ख़िलाफ़ आवाज़ क्यों नहीं उठाई। उन्होंने जवाब में कहा था कि वे लोग चाहते थे कि मैं उनसे उलझूँ, बहस करूँ, लेकिन मैं अपने सृजनात्मक कार्यों में लगा रहना चाहता था। उस समय यह रवैया मुझे थोड़ा कायरता भरा लगा था – क्यों ऐसी हरकतों के प्रति अपने दृष्टिकोण का या उन हरकतों का ज़िक्र नहीं किया अब्बा ने! लेकिन अब परिपक्वता आने के बाद मैं यह समझती हूँ कि कोई भी शख़्स पूरी शिद्दत के साथ कविता लिखने और तोहमतों से लड़ने का काम एक साथ नहीं कर सकता है। दिलचस्प बात तो यह है कि इन लोगों के बारे में हमारे परिवार में कोई बात नहीं होती थी। बाद में मैं अक्सर कई परिवारों में इस विषय पर बातें होती सुनती कि फ़लाने ने हमारे परिवार के साथ ऐसा–ऐसा बुरा बर्ताव किया वग़ैरह–वग़ैरह। मुझे इन लोगों के बारे में संयोग से तब पता चला, जब एक बार अब्बा–अम्मी आपस में अब्बा के ख़िलाफ़ होने वाले एक और अतिक्रमण के बारे में बात कर रहे थे। मैंने तब अब्बा को कहते सुना था कि ये लोग मुझसे दुश्मनी करके खुद के लिए नाम कमा रहे हैं और मैं इनसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहता हूँ। मुझे दागिस्तान के एक लेखक के शब्दों ने हैरान कर दिया था (मैं यहाँ उनका नाम नहीं लेना चाहती हूँ), जो उन्होंने शायद पिछली सदी के साठ या सत्तर के दशक में अब्बा के सम्बन्ध में कहे थे। "रसूल हमज़ातोव अपनी माँ के बारे में कविताएँ लिखते हैं। उनकी माँ कौन हैं – आदर्श कर्मचारी या प्रगतिशील विचारों के मशालवाहक?" ऐसे लोग हमारे यहाँ महान लेखकों की पंक्ति में थे! उन लोगों को उस समय ऐसी बातें लिखकर इस बात की उम्मीद रहती थी कि उनके अनुमोदन में कई हाथ उठ जाएँगे, साथ ही उन्हें कुछ ख़ास लोगों की सरपरस्ती की तवज्जो भी रहती थी। मैं आज यह सब इसलिए लिख रही हूँ क्योंकि अब भी ऐसी बातें लिखने वालों को जननायक बनाने की कोशिश की जाती है, जबकि उनके लिखे या कहे में कुछ भी स्तुति योग्य नहीं है। मैं इन बातों का ज़िक्र इसलिए भी कर रही हूँ ताकि पाठक उस इनसान की जीवंत छवि देख सकें जिसने अद्भुत पुस्तकें लिखीं और ज्ञानपूर्ण शब्द कहे। ताकि पाठक समझ सकें कि इसके बावजूद कि लोग उनके प्रति अपार स्नेह रखते थे और वे लोगों के प्रति, उनके जीवन में भी रंजो ग़म कम नहीं थे। उनको विभिन्न पड़ावों से – पूर्ण समर्थन से लेकर अत्याधिक तोहमतों वाले तक– गुज़रना पड़ा था हालाँकि उन प्रसंगों के बारे में उन्होंने कभी कोई चर्चा नहीं की। यह कोई संयोग नहीं है कि उनकी कविता में ऐसी मार्मिक पंक्तियाँ हैं जो वही इनसान लिख सकता है जिसने

उस मर्म की अनुभूति की हो।

''दोस्तों का झूठ और दुश्मनों की तोहमतें'':

जब प्रभात बेला में
इस धरती से विदा लेने
का पल आए
तो मेरी आत्मा
किसी वृक्ष और चीतल में
न जा समाए
जब मैं ज़िंदा था
मुझपर माहिर निशानेबाज़ों
ने खूब तीर चलाए हैं
और मैं यह भी बखूबी जानता हूँ
कि अँधेरे की आड़ में
पेड़ भी काटे जाते हैं और
शाखाएँ भी चटकाई जाती हैं...
(वसीयत)

अशिष्टता और हठपूर्वक सब
दोहराया गया,
जो दूर था उसने
तीर सीधे दिल पर दाग़ा
और जो साथ चल रहा था
उसने मुझे गिराने के
सभी पैंतरे अपनाए....
(बर्फ़ गिर रही है,
जीवन कितना छोटा है...)

दोस्तों की दग़ाबाज़ी को
तो मैं जानता हूँ
पर दुश्मनों की नफ़रतों से
कभी सामना न हुआ
(मेरी नातिन, नन्ही शाहरी के लिए)

तुम कड़वाहट चख चुके हो
और दुःख को समझ चुके हो
तुम्हें कौवों के झुण्डों
ने बहुत बार चोंचें मारी हैं
(दिन दहाड़े हुई वारदात)

उन की महानता का एहसास पूरी तरह से तब होता है जब कौवों के झुण्डों से मिली खरोंचों के बाद भी वे प्रेम–गीत लिखते रहते हैं और लोगों को बुलंद सितारे कह कर पुकारते रहते हैं।

आज भी मेरा कंठ अवरुद्ध हो जाता है जब उनकी शुरूआती कविता 'कभी जो दोस्त था' पढ़ती हूँ –

मेरा एक दोस्त था,
मैं उससे प्यार करता था
मुझे उस पर भरोसा था और
मैं उसे अपने भाई–सा मानता था
उसके स्वागत में
मैं न केवल अपने घर के
बल्कि दिल के द्वार भी
पूरे खोल देता था
वह जोश में कहता:
"मैं बहुत दिनों से सोया नहीं था,
पर नींद आने पर
मैंने तुम्हें सपने में देखा!"
मैंने कभी नहीं सोचा
कि वह झूठ बोल रहा है
वह झूठ बोल भी नहीं रहा था:
वह आधी रात को मेरे ख़िलाफ़
शिकायतनामा लिख रहा था।
मैं उसे अपने दुश्मनों
के बारे में बताता
और बाद में ज्ञात होता
कि वह उनका दोस्त था
मैं उसे अपने दोस्तों
के बारे में बताता
वह मुझे उनसे दूर करने
की तरतीबें तलाशता

मैं अपने अब्बा के ख़िलाफ़ दागिस्तान मीडिया में छपे कुछ लेखों पर अपनी राय बताए बिना नहीं रह सकती हूँ। उनमें से एक मुर्तज़ाली दुग्रिचीलव का लेख है, वे दागिस्तान के हैं और आजकल विदेश में रहते हैं। उन्होंने अपने लेख में रसूल हमज़ातोव पर कई गुनाहों का आरोप लगाया था। उनके उन दावों का आधार क्या था? सबसे पहले तो यह कि हमज़ातोव ने किसी को जेल से बाहर निकालने में मदद की थी या यह कि उनकी पहल पर भारी भूकंप से क्षतिग्रस्त हुए बुइनकस्क में राहत कार्यों के लिए एक बड़ा आर्थिक बिल पास कर दिया गया था (यह तथ्य भी अब्बा द्वारा किये गए उन अनगिनत अच्छे कामों की तरह ही है, जिनके बारे में मुझे हमेशा दूसरों से ही पता चला, क्योंकि अब्बा अपने कामों का कभी ढिंढ़ोरा नहीं पीटते थे)। इस लेख को लिखने वाला अपने "सहयोगी–विदेशियों" के साथ यह सोचकर हैरान था... कि क्या यह बेतुकी बात नहीं है कि किसी क्षतिग्रस्त क्षेत्र का नेता उसकी बहाली करे और किसी अवैध रूप से सज़ायाफ्ता व्यक्ति को एक वकील द्वारा जेल से रिहा किया जाए। वैसे काव्य प्रतिभा का इन समस्याओं से कोई लेना–देना नहीं है। शायद यहाँ पर यह याद करना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमज़ातोव सोवियत संघ के सर्वोच्च सोवियत अध्यक्ष–मंडल के सदस्य थे। किसी भी संतुलित मस्तिष्क वाले के लिए यह कोई रहस्य नहीं होगा कि कि सत्ता में रहने वाले लोग हर समय में हर देश में घटनाओं को प्रभावित करते ही हैं। इसके बावजूद उपरोक्त लेखक और उन की मंडली को ये बातें हज़म नहीं हुईं। हाँ, यह एक एकदम अलग बात है कि कोई शक्ति–सम्पन्न व्यक्ति किसी घटना–विशेष को कैसे प्रभावित करता है। और इस सन्दर्भ में लोगों के पास मेरे अब्बा के लिए नेक शब्दों के अलावा कुछ भी नहीं था। यहाँ तक कि यह अभियोजक खुद भी लिखता है: " हमज़ातोव की साख़ को इस तथ्य ने और मज़बूत बनाया है कि वे लगभग उन सभी लोगों की मदद करने में कामयाब रहे, जिन्होंने सहायता के लिए उनकी तरफ हाथ बढ़ाया।" ये शब्द शायद हर किसी के सन्दर्भ में नहीं कहे जा सकते हैं। मेरे अब्बा पर एक और गंभीर आरोप साल 1951 में उनके द्वारा इमाम शमील के ख़िलाफ़ लिखी कविता के लिए लगाया गया कि शमील विरोधी दौर में उन्होंने यह कविता मात्र लेनिन पुरस्कार प्राप्त करने के लिए लिखी, जबकि हक़ीक़त यह है कि वह

प्रतिष्ठित पुरस्कार अब्बा को कहीं जा कर वर्ष 1963 में मिला था। कविता निश्चित रूप से दुग्रिचीलव के लेख में पूरी दी गयी है। वर्ष 1968 में लिखी अब्बू की किताब 'मेरा दागिस्तान' में आंशिक रूप से वे अंश भी दिए गए हैं, जहाँ हमज़ातोव अपना जुर्म स्वीकारते हैं और लिखते हैं कि उन्होंने ऐसा स्वेच्छा से किया है न कि किसी और के फ़रमान से। अब्बा के कहे शब्दः "मुझे नहीं पता कि दगिस्तानियों ने मुझे उस कविता के लिए माफ़ किया है या नहीं, शमील की आत्मा ने भी मुझे उसके लिए माफ़ किया है या नहीं, लेकिन मैं खुद को उसके लिए कभी माफ़ नहीं करूँगा।" ज़ाहिर सी बात है कि उस लेख के लेखक यह सब कभी और कहीं उद्धृत नहीं करते हैं।

बेशक, अब्बा ने ये अलफ़ाज़ दुग्रिचीलव और उनके जैसे अन्य लोगों के लिए नहीं लिखे थे, जिन्हें न तो अनुकम्पा देने का कोई अधिकार था और न ही रसूल हमज़ातोवको उसकी कोई ज़रूरत। उन्होंने ये शब्द अपनी अंतरात्मा की आवाज़ व्यक्त करने के लिए लिखे थे। शायद इसीलिए ताज़िन्दगी वे अपनी अलग–अलग दीर्घ–कविताओं (मेरा दिल पर्वतों पर रहता है; लोग और परछाइयाँ; प्रार्थना) में उस कविता को लिखने पर पछतावा व्यक्त करते रहे। वे इस बारे में लगातार इसलिए कहते थे क्योंकि वे उसके लिए खुद को दोषी मानते थे और स्वयं को उसकी याद दिलाते रहते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण है – 'नए साल की पूर्व संध्या पर लिखी कविताओं' में अपनी माँ को संबोधित करते हुए लिखे शब्दः

तुम कभी भी मुझे
फटकार नहीं पाओगी,
उस सख़्ती से
जैसे मैं खुद को फटकारता हूँ।

क्या हमज़ातोव के अलावा उनके सभी हमउम्र 27 साल की उम्र में अपने समय से आगे थे और देश में होने वाली चर्चाओं पर कान नहीं देते थे, उन पर विश्वास नहीं करते थे? क्या सभी में आधिकारिक दृष्टिकोण को न मानने या विश्वास न करने की अद्भुत क्षमता थी? लेकिन अब्बा ने विश्वास किया और पूरी ईमानदारी से उस आवेग के साथ बहे। और साल 1968 में उन्होंने उस किताब में, जिसने उन्हें विश्व–ख्याति दिलवाई, अपने तथाकथित गुनाह की खुलकर निंदा की है। शायद तब चुप रहना अधिक आसान रहा होता। लेकिन कवि के पश्चाताप और आत्म–निंदा के बावजूद अभियोजक संतुष्ट नहीं होता है क्योंकि उसके बाद यह मुद्दा लम्बे समय तक सार्वजनिक चर्चा से बाहर हो जाता है... और अफ़सोस कि दुग्रिचीलव महोदय और उनके सहयोगियों को अत्यंत वांछित तथाकथित जज की भूमिका से हाथ धोना पड़ जाता है। उन्होंने अपने लेख की प्रस्तुति भी रोचक की हैः "जैसे ही मौक़ा मिला, उसने सभी दाग़ों से छुटकारा पा लिया।" यहाँ उनका इशारा किस मौक़े के मिलने की तरफ़ है?क्या राष्ट्रीय–नीति में कोई बदलाव आ गया था?नहीं। वे लेखक महोदय यह भी लिखते हैं, "दागिस्तान में हमज़ातोव के अलावा सब को शमील का नाम लेने तक की मनाही थी।" क्या हमज़ातोव को किसी ने यह अनुमति दी थी? कहा थाः "लिखो"?नहीं, बात सिर्फ़ इतनी है कि हमज़ातोव अपनी बात कहने का साहस रखते थे और ग़लती हो जाने पर उसे कुबूलने की विनम्रता भी, जो बहुत मुश्किल काम और दुर्लभ गुण होते हैं। क्या वह समय कॉकेशिया युद्ध और शमील के बारे में लिखने का उपयुक्त समय था?इस बारे में गिओर्गी दनेली ने अपनी पुस्तक "द टोस्टर ड्रिंक्स टू द बॉटम" में उद्धृत किया है। इस किताब के आधार पर अब्बा और वी. अग्नेयेव ने हाजी मुराद के बारे में एक पटकथा लिखी थी, जिसे दनेली ने अनुमोदित भी कर दिया था। फिल्मांकन की तैयारी का बहुत काम हो भी गया थाः जगह चुन ली गयी थी, अभिनेताओं का चयन हो गया था, वग़ैरह–वग़ैरह। लेकिन फिर शूट रद्द कर दिया गया। दनेली ने लिखा है कि इतना आगे आने के बाद प्रोजेक्ट को रद्द करने की वजह उनके लिए एक रहस्य है, यह बात रसूल हमज़ातोव की भी समझ से परे थी। लेकिन जैसा कि कहा जाता है अक़्लमंद के लिए इशारा काफ़ी है।

मैं यहाँ पर काकेशिया युद्ध और तत्कालीन दागिस्तान प्रमुख इमाम शमील से जुड़े एक अहम पर गुमनामी के अँधेरे में रहे तथ्य का उल्लेख करना चाहूँगी। जिस साल जॉर्जिया के रूसी साम्राज्य के साथ हाथ मिलाने की एक बड़ी जयंती मनाई जा रही थी, दागिस्तान की सरकार की भी अभिलाषा ऐसी जयंती मनाने की हुई। इसके लिए सभी शोधकर्ताओं और इतिहासकारों से उन तथ्यों को तलाशने के लिए कहा गया, जिससे दगिस्तान के स्वेच्छा से रूस के साथ जुड़ने की पुष्टि होती हो। वैज्ञानिक अपनी पूरी कोशिश के बाद भी ऐसा कोई तथ्य तलाश नहीं सके। क्या तब इन प्रयासों को दागिस्तान सरकार की यह मंशा माना जाए कि वह जबरन बनाए गए संघ की तरफ़ लोगों का ध्यान आकर्षित करवाना चाहती थी?मैं यह पूरे विश्वास से कह सकती हूँ कि इमाम शमील के नेक कामों और नाम को पुनर्जीवित करने के लिए जितना कुछ रसूल हमज़ातोव ने किया शायद ही किसी और साहित्यकार ने किया होगा। मैं यहाँ यह भी कहना चाहती हूँ कि इमाम शमील के ख़िलाफ़ लिखी गयी कविता का शुमार कभी भी 'ऊँचे सितारे' काव्य–संकलन में नहीं किया गया, जिसके लिए सन् 1963 में रसूल हमज़ातोव को लेनिन पुरस्कार से नवाज़ा गया था। अगर दुग्रिचीलव ने एक बार भी हमज़ातोव की किताब 'मेरा दागिस्तान' का वह भाग पढ़ा होता, जहाँ उन्होंने इस कविता के पीछे की कहानी लिखी है तो वे यह समझ जाते

कि सन् 1961 में हमज़ातोव ने इमाम शमील पर एक बिलकुल दूसरी कविता भी लिखी थी। मेरा यह मानना है कि दागिस्तान के प्रकाशकों को मेरे अब्बा के बारे में कुछ भी छापने के पहले तथ्यों की जाँच करनी चाहिए थी। मेरे और लेखक संघ के कई लेखकों के लिए दुग्रिचीलव का यह कथन आश्चर्यजनक है – कैसे ऐसी परिस्थितियाँ बन गईं कि मैं रसूल हमज़ातोवऔर उनके कट्टर विरोधी अबू बाकर के बीच फँस गया?" दुग्रिचीलव के हमज़ातोव के साथ जब कोई सम्बन्ध ही न थे तो वे अब्बू और अबू बाकर के बीच कैसे आ पाए?इस तरह से तो वे अबू बाकर और किसी के भी बीच आ सकते थे। अब तो सिर्फ़ अटकलें लगाई जा सकती हैं लेकिन उनका वह कथन सुनने में बड़ा प्रभावी लगता है और तथाकथित निष्पक्ष न्यायाधीश के लिए एक अच्छे मुखौटे का काम करता है। मैं उस विषय पर भी एक बारीकी सामने लाना चाहती हूँ जिसके अनुसार अबू बाकर ने मेरे अब्बा के पुनर्निर्वाचन के लिए कोशिशें की थीं। इस पुनर्निर्वाचन प्रक्रिया में वे खुद पत्रिका 'सोवियत दागिस्तान' के सम्पादक के पद के लिए नहीं बल्कि हमज़ातोव द्वारा छोड़े गए उप–संपादक के पद के लिए खड़े हुए थे। इस बारे में दुग्रिचीलव ने ठीक लिखा था कि हमज़ातोव के समर्थकों ने ख़ास तौर से कवि नुरातदिन युसूपव ने इस बात का विरोध किया और कहा कि हम अपने प्रमुख को उसकी ग़ैर मौजूदगी में कैसे चुन सकते हैं? लेखक अबू बाकर बिलकुल भी बेवकूफ़ आदमी नहीं थे। वे किसी भी हाल में ऐसे इनसान का प्रमुख के पद के लिए पुनर्निर्वाचन करने को नहीं कहते जो कई सम्मानों से नवाज़ा जा चुका हो, सोवियत संघ के सर्वोच्च सभापतिमंडल का सदस्य हो और जिसने उन्हें खुद अपना उप चुना हो। यानी उन्हें ऊपरी तबक़ों का समर्थन प्राप्त था और ऐसे निर्देश मिले थे। माना कि पत्रिका 'सोवियत दागिस्तान' का प्रमुख होना कोई बड़ी बात नहीं थी लेकिन लोगों को मेरे अब्बा का सोवियत संघ के सर्वोच्च सभापतिमंडल का सदस्य होना पसंद नहीं आता था। उन लोगों की योजना बिलकुल स्पष्ट थी; पहले इनसान की प्रतिष्ठा को उसकी मातृभूमि में धूमिल करो और फिर... यही कारण है कि वह अजीबोग़रीब प्रतिद्वंदी अब्बू के असफल तख़्तापलट के बाद किसी क्षेत्रीय अख़बार का संपादक बना और बाद में उस पत्रिका का जो मेरे अब्बा के प्रबंधन के दायरे में तो नहीं थी लेकिन निकलती उसी संस्था से थी जिससे वे जुड़े हुए थे। मैं अपनी तरफ़ से सिर्फ़ यही चाहती हूँ कि किसी को भी ऐसे डिप्टी या सहकर्मी न मिलें।

मैं अब्बा को प्रतिष्ठा के सोपान से हटाने के लिए किए गए अन्य विफल प्रयासों के बारे में नहीं लिखूँगी, उनका ज़िक्र ज़ाहिर बात है कि दुग्रिचीलव भी नहीं करते। मैं मुख्य रूप से यह सब इसलिए लिख रही हूँ क्योंकि मेरे पिता का मृत्यु के प्रति विशेष दृष्टिकोण था। वे उस प्राचीन नीतिवचन का आदर करते थे कि मृत व्यक्ति की निंदा नहीं करनी चाहिए। मैं यह सब इसलिए भी नहीं लिख रही हूँ कि मृत हमज़ातोव पर आरोप लगाने के लिए दुग्रिचीलव को फटकार लगाई जाए। दागिस्तानियों के हृदय में मेरे अब्बा आज भी प्राग में कार्यरत दुग्रिचीलव की तुलना में कहीं अधिक जीवित हैं। और मैं किसी को शिष्टाचार के नियम सिखाने –दुनिया से गुज़र गए लोगों के बारे में बुरा नहीं कहते – के लिए भी नहीं लिख रही हूँ। मेरे अब्बा दागिस्तान और सोवियत संघ के लिए एक अहम शख़्सियत थे, हैं और रहेंगे। लेकिन उन की छवि को कलंकित करने के लिए किये गए ग़लत प्रयासों पर मैं चुप्पी भी नहीं साध सकती।

मेरे अब्बा के रवैये और ख़ास तौर से मृत्यु के बारे में उनके दृष्टिकोण जानने वालों के लिए दुग्रिचीलव के इस दावे पर विश्वास करना असंभव हो जाता है कि अबू बाकर के अंतिम संस्कार के समय वे उस एक पत्रिका का संपादक बनने की पेशकश में लगे थे जो उनके अधिकार–क्षेत्र से बाहर थी। अगर उन्होंने यह प्रस्ताव रखा भी होगा तो निश्चित रूप से अंतिम संस्कार के समय नहीं। हो सकता है यह पेशकश उन्होंने उस समय की हो जब पत्रिका आर्थिक और लोकप्रियता की दृष्टि से ख़राब दौर से गुज़र रही होगी। लेखक–संघ उस पत्रिका को बचाए रखना चाहता था, जिसमें दागिस्तान के अधिकतर साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। और अगर दुग्रिचीलव ने उसके लिए इंकार किया तो वह उनकी समस्या है। दागिस्तान में प्रकाशित होने वाली एकमात्र रूसी–भाषा की पत्रिका, जिसमें दागिस्तान के अधिकतर लेखकों की रचनाएँ छपा करती थीं, नए प्रधान–संपादक के आने के बाद मुख्य रूप से अनूदित प्रवासी साहित्य छापने लगी।

अपने लेख में दुग्रिचीलव ने रसूल हमज़ातोव और कवि मार्कव के बीच समानताएँ खींची हैं। दुग्रिचीलव के सौंदर्य–संबंधी पूर्वाग्रहों की मुझे कोई परवाह नहीं है, लेकिन मेरी राय में सन् 1963 के संग्रह से उद्धृत इमाम शमील पर लिखीं मार्कव की इन दो पंक्तियों – शमील जिस पथ पर चले, मेरे अल्फ़ाज़ ने उसे शर्मिंदा न किया – की तुलना मेरे अब्बा द्वारा साल 1961 में शमील को समर्पित लिखी इस लम्बी कविता से करना बेवकूफी है:

फिर से पुराना घाव,
जो भर ही नहीं पा रहा,
मेरे दिल को चीरता है,
छलनी करता है।

.. ..

उसे सच भी न मानें
धोखा ही मैंने उन्हें ऐसा दिया है
मेरे ओछे शब्दों ने उन पर
तोहमतों का बाण चलाया है।
तलवार से लिखने वाले कभी
अपमान अपना भूला नहीं करते!
ख़ैर लेकिन तुम,

मेरे अपने लोग,
इस पाप के लिए
मुझे माफ़ कर दो।
मैं तुमसे बेतहाशा प्यार करता हूँ
मेरी प्यारी मातृभूमि तुम तो
अपने कवि को यूँ न देखो
जैसे देखती है

बेटे से व्यथित माँ

मार्कव की अच्छी कविता "सैनिक चल रहा है" को उद्धृत करने के बाद, किस आधार पर दुग्रिचीलव दो कवियों – मार्कव और हमज़ातोव – को आमने–सामने रख कर यह दिखाना चाहते हैं कि इन दोनों में से एक सचमुच में देशभक्त था और दूसरा सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने की मात्र कोशिश करता था। हमज़ातोवके सृजन कार्यों की ऊँचाई किसी प्रमाण की मोहताज नहीं है। और जो लोग यह बात समझ नहीं सकते हैं, उनके लिए पर्याप्त होगा रसूल हमज़ातोव की वेबसाइट खोलकर यह देख लेना कि आज भी देश के कितने कोनों में लोग उनकी कविताओं को पढ़ते और पसंद करते हैं। उनकी रचना 'सारस' को समर्पित न जाने कितने ही स्मारक बने हैं। यह रचना शहीद सैनिकों के लिए वास्तविक श्राद्धगीत है। हमज़ातोव की शायरी के आकर्षण का एक मुख्य कारण यह है कि इसमें हमेशा एक जीवित व्यक्ति अपने सभी उतार–चढ़ावों, ग़लतियों, खुशियों और दर्द के साथ होता है। लेकिन जो आदमी कभी किसी दूसरे के घर में पत्थर नहीं फेंकता: वह कहता है देखो मैं कितना अच्छा हूँ, मैंने ऐसा नहीं किया, लेकिन दूसरे ने किया। और दुग्रिचीलव का यह कहना कि मार्कव ने हमज़ातोवको इमाम शमील के ख़िलाफ़ कविता लिखने के लिए मना किया था उतना ही सच है जितना कि इमाम शमील के ख़िलाफ़ कविता का शुमार अब्बा के संकलन "ऊँचे सितारे" में होना।

मेरे पिता कौन थे और दागिस्तान के सामजिक और साहित्यिक जीवन में उनकी क्या भूमिका रही है, इस बात को दागिस्तानियों ने काफ़ी पहले समझ लिया था और अपने लिए निर्धारित कर लिया था। दुग्रिचीलव अपने इस तानों–तिश्नों से कि अब्बा अनुचित तरीक़े से "महत्त्वपूर्ण भूमिका" निभाने की कोशिश करते थे, मेरे अब्बा की भूमिका को और सुढ़ करते जाते हैं।

मैं गिओर्गी दनेली के शब्दों का हवाला देते हुए एक दिलचस्प तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ – विभिन्न स्तरों पर साहित्य और राजनीति क्षेत्रों से जुड़े योग्य, प्रतिभाशाली और बुद्धिमान वे सभी लोग जो मेरे अब्बा के संपर्क में आए, हमेशा उनकी प्रशंसा करते हैं और उनके प्रति गहरा सम्मान व्यक्त करते हैं। मात्र कुछ विशिष्ट लोग जिन्होंने अपनी ज़िन्दगियों में बड़ी ग़लतियाँ आदि की थी, वे मेरे अब्बा की निंदा करते हैं, उन पर उँगली उठाते हैं। लेकिन यह शायद किसी हद तक उनका खुद को स्थापित करने का तरीक़ा होता हो ... यहाँ पर मुझे क्रीलव की प्रसिद्ध पंक्तियों को कुछ यूँ लिखने का मन कर रहा है: "दोस्तो, आप किसी भी ओर मुँह कर क्यों न बैठें, संगीतकार और जज न बन पाएँगे "

मेरे अब्बा के ऊपर पत्रकार उज़ुनाएव द्वारा लगाए गए इस आरोप, कि वे कुमीकों को नापसंद करते हैं, के बारे में भी चंद शब्द कहना चाहती हूँ। पत्रकार साहब यह आरोप इस आधार पर लगाते हैं कि रसूल हमज़ातोवने उनके लिए किसी सिफ़ारिश पर दस्तख़त नहीं किये थे, जिसका कारण, पत्रकार जी को लगा कि उनका कुमीक होना था।

मैं पूरे दावे के साथ कह सकती हूँ कि मैंने कभी भी अब्बा को कुमीक क्या किसी भी जाति के लोगों के प्रति विद्वेष की भावना रखते नहीं देखा, हर काम का आकलन वे पूर्णतः वस्तु–परक दृष्टिकोण से करते थे। लेखक संघ के सभी सदस्य अच्छी तरह से यह जानते हैं कि मेरे अब्बू का कुमीक कवयित्री जमिनात करीमवा के प्रति कितना सौहार्द और आदर पूर्ण व्यवहार था। उन्होंने युवा कवयित्री का हमेशा मार्गदर्शन किया, हर संभव सहायता की। यहाँ तक कि कवयित्री को उन्होंने मार्मिक पंक्तियाँ भी समर्पित कीं, जो मात्र किसी बहुत प्रिय और क़रीबी व्यक्ति के लिए कही जा सकती हैं:

जमिनात, मैदान का
नाजुक फूल हो तुम,
तुमसे हर मुलाक़ात पर क्यों
बढ़े तुम्हारे हाथ को देखकर
याद आते हैं मुझे तुम्हारे पिता?...

मैं हूँ नहीं जादूगर,
न ही कोई नामी हकीम
गुनाह मेरे झुकने नहीं
देते सजदे में मुझे
काश! मेरी ये कविताएँ
कुबूल हों खुदा को
और पूरी हो जाए
मेरी यह दिली दुआ
जो लिखी हुई है हर सफ़हे पर कि
कुमीक की इस गीत गाती कोयल
के परों का एक भी पंख न गिरे

क्या ये पंक्तियाँ किसी भी तरह से उस इनसान की कलम से निकली हो सकती हैं जो कुमीकों से नफ़रत करता हो?

प्रतिभाशाली आलोचक कमाल अबूकव ने कई वर्षों तक मेरे पिता के सहायक के रूप में काम किया, वे उनके बहुत अच्छे दोस्त थे और मेरे अब्बू उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। कई कुमीक लेखक: अतकाई, अनवर, अजियेव, कामिल सुल्तानव वग़ैरह भी मेरे अब्बा के क़रीबी दोस्त थे। कामिल सुल्तानव को तो उन्होंने कुछ पंक्तियाँ भी समर्पित की थीं – "कामिल दानियालविच, मेरे पुराने दोस्त ..."। मुझे लगता है कि कामिल

दानियालविच के प्रतिभाशाली वैज्ञानिक बेटे प्रोफ़ेसर काज़बेक सुल्तानव मेरे पिता के बारे में बहुत सारी अच्छी बातें साझा कर सकते हैं। मेरे अब्बा के अपनी पीढ़ी के लेखकों – अब्दुलवहाब सुलेमानव और महामेद–सुल्तान याख्यायिव के साथ बहुत अच्छे संबंध थे। साथ ही अब्बा के सम्बन्ध कुमीक थिएटर की पूरी टीम के साथ बहुत मधुर थे। अब्बू के सम्बन्ध महामेद मामेविच जम्बुलातव के साथ दोस्ताना थे। शेख़ सईद इसायिविच शेख़सैदव और हिजरी इसायिविच शेख़सैदव के साथ उनके संबंधों की चर्चा मैं अलग से करुँगी। मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि मेरे नाना–नानी बुइनकस्क में रहते थे, जहाँ उस समय अधिकांश आबादी कुमीकों और अवारों की थी, और इन क़ौमों के प्रतिनिधियों के बीच दोस्ताना–रिश्ते एक बहुत ही स्वाभाविक बात होती थी। यहाँ यह उल्लेख करना भी ज़रूरी है कि वहाँ पर स्कूली बच्चे जब राष्ट्रीय भाषा बतौर विषय चुनते थे तो विविधता की चाह में अवारी क़ौम के बच्चे कुमीक भाषा सीखते थे और कुमीक – अवारों की भाषा। कुमीकों और मेरे अब्बा के बीच के संबंधों के बारे में बातचीत लम्बे समय के लिए जारी रखी जा सकती है.. . मुझे लगता है कि अगर उज़ुनाएव द्वारा बताया गया प्रकरण सच भी है तो उस सिफारिश पर दस्तख़त न करने की वजह दरअसल याचिकाकर्ता का व्यक्तित्व रहा होगा न कि उसकी राष्ट्रीयता। यहाँ मैं अपने अब्बा की एक वक्रोक्ति को उद्धृत करना चाहूँगी: "अपने स्वास्थ्य को कभी भी अंतरराष्ट्रीय महत्त्व का नहीं मानना चाहिए।" इस व्यंग्योक्ति को मुझे थोड़ा दूसरा रंग देने का मन कर रहा है, "अपने व्यक्तित्व को कभी भी अंतरराष्ट्रीय महत्त्व का नहीं मानना चाहिए।" यह मैं उपर्युक्त लेखक के साथ विवाद के लिए नहीं लिख रही हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं नहीं चाहती कि अगर कुमीक बच्चे रसूल हमज़ातोव की कविता तक उज़ुनाएव का लेख पढ़ने के बाद पहुँचे तो उनके मन में बरबस यह निराशा और नाराजगी न आए कि यह कवि तो कुमीकों को पसंद नहीं करता था।

अब्बा के दोस्तों में ततार खिज़गिल अवशालूमव और रूसी नतालिया कपियेवा भी थे ... लाक लेखक अबुतालिब गफ़ूरव उनकी किताब के नायक थे और प्रतिभाशाली लाक फ़ोटोग्राफ़र अमीन चुतुयेव और विख्यात संगीतकार मुराद कझलाएव को समर्पित मेरे अब्बा की सुंदर कविताएँ भी हैं।

मैं इन तथ्यों का सिर्फ़ इसलिए उल्लेख कर रही हूँ कि किसी के भी मन में यह संदेह न रह जाए कि रसूल हमज़ातोव राष्ट्रवादी थे।

मुझे बहुत पसंद हैं सभी क़ौमें
और एक नहीं, दो नहीं, कई बार
लानत है उस पर
चाहे जो कलंकित करना किसी
भी क़ौम को

अब्बू की ये पंक्तियाँ मात्र उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं थीं।

मूल रूसी से अनुवाद : प्रगति टिपणीस (अनन्य" पत्रिका की संपादक प्रगति टिपणीस मॉस्को में लंबे समय से अनुवादक के रूप में कार्य कर रही हैं।
Email-
pragatitipnis@gmail.com)

डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र
देवधा हाउस 5/2,
वसंत विहार एनक्लेव,
देहरादून–248006
मो.नं. – 7060004706

मां दुर्गे !

रंगोली रचती सुकुमारी
अंगुलियाँ दिख रहीं अरक्षित
मां दुर्गे! इन सभी करो में
सज्जित हों दिव्यास्त्र तुम्हारे।
पूजा भूल गए भलमानुष
घर में खड्गों के वारिस की
सता रहा है डर खंजर का
करें खुशामद यों जिस–तिस की
ये कुमारियाँ, ये कुलवधुएँ
पहले से असहाय अधिक हैं
इन्हें तुम्हारी भाँति मिले
देवों के अपराजित बल सारे।
पार कर रही लक्ष्मण रेखा
धरती की पुत्रियाँ छलित हो
संस्कारी प्रतिभाएं मुरझातीं
जुलूस से पदमर्दित हो
भूखी–प्यासी, हारी हर संतान
चाहती माँ का आँचल
असुरों के नख–रद से घायल
हर कन्या माँ तुम्हें पुकारे।
हार रहा मानवता का दल
दानवता के घटाटोप से
पुत्र अदिति के बुझे– बुझे
दिखते अँधियारे के प्रकोप से
जब तक शक्ति– सम्बलित होती
नहीं धरा की हर कुलांगना
तब तक संविधान के पन्ने
हैं कागज के फूल हमारे।

लोक कवि- रसूल हमज़ातोव

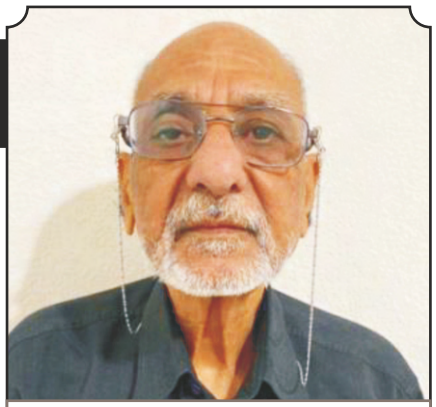

साबिर सिद्दीकी
ईमेल : sabir4282@gmail.com

विशालकाय दैत्यों और सुंदर परियों की हृदयग्राही कहानियों का रोमांचपूर्ण घटनास्थल कोहकाफ़ ऊंची उड़ान भरनेवाले उकाबों, पवनवेग से दौड़नेवाले घोड़ों, सजीले सवारों तथा बाँके जियालों का रहस्यपूर्ण देश कफकाज़, जहाँ का इतिहास सैकड़ों बरस खंजर की नोंक व खून की बूंदों से गगनचुंबी बर्फीली चट्टानों व महकती हुई पुष्प वादियों को रंगीन करता रहा। कई शताब्दियों तक कफकाज़ प्रश्चिम और पूर्व की विस्तारवादी साजिशों का केंद्र बना रहा। इसीलिए इतिहास ने कफकाज़वासियों को शौर्य तथा शेरदिली का पाठ तो दिया ही है, साथ ही प्यार की पवित्रतम दौलत से भी खूब मालामाल किया है।

प्राचीन समय से ही शूरवीरों की रहस्यपूर्ण कहानियाँ, मनमोहक लोरियों, लोकोक्तियाँ यहाँ के जिंदादिल लोगों के दिलों को गरमाते रहे हैं। इन्हीं लोक परंपराओं की गर्माहट, माँ की लोरियों की सुहावनी लय तथा पिता 'हम्ज़ा' की काव्य–प्रतिभा की चर्चाओं के बीच कफकाज़ स्थित दागिस्तान के जनकवि रसूल हमज़ातोव ने आँखें खोली। बचपन और लड़कपन का समय 'त्सादा' में ही गुजरा, जिसके अरुणोदय और सूर्यास्त के दृश्य, स्वयं त्सादवासियों के विचारानुसार संसार में सबसे अधिक रोमांचकारी होते थे।

रसूल हमज़ातोव ने अपने काव्य जीवन में उपलब्धियों के जो फूल चुने हैं, उनको त्सादवासियों की सटीक कहावतों ही ने नहीं सींचा, बल्कि लोक–साहित्य की हर धारा और झरने व हर स्रोत ने उन्हें सदाबहार ताजगी दी है। रसूल की काव्य–प्रतिभा के आगे लोक–साहित्य के अनगिनत बेनाम रचनाकारों तक ही पहुँचकर नहीं टूट जाते, बल्कि उनका सिलसिला क्लासिकी साहित्य की मजबूत परंपराओं तक जाता है।

सत्य की चाह और उसकी खोज रसूल हमज़ातोव के काव्य के मूलभूत लक्षण हैं। वे हर समय सत्य को भरपूर ढंग से अपनी रचनाओं में प्रतिबिंबित करने के उद्देश्य से कला के सर्वोत्तम साँचों की खोज में संलग्न रहते है तथा अपनी भावनाओं और विचारों को किसी भी पल कोई भी मोड़ दे सक्ने का अनुपम सामर्थ्य रखते हैं। 1962 में जब उनकी कविताओं का नया संग्रह "विसोकिये ज्योज्दी"(ऊंचे सितारे) प्रकाशित होने को था तब साधारणतः विचार यह था कि इस बार अपनी कविताओं की विषय वस्तु के रूप में रसूल के हर विचार और हर कामना का केंद्र मनुष्य मात्र है।

"उड़ के पहुंचे है रॉकेट कई मरतबा
दूर तारों औ' अम्बर की ऊंचाई तक
लोगो, लोगों, ए मेरे सितारों मगर
काश, मैं उड़के आ पाऊँ बस तुम
तलक।"

रसूल ने जिस वस्तु को चाहा है, भरपूर अंदाज में चाहा है किन्तु दागिस्तान के साथ उनका प्रेम अनुपम है। यह ऐसा विषय है जिस पर अनेक बार कवि की लेखनी उठी है और हर बार वह एक नए उत्साह के साथ इस विषय की ओर पलटा है। न वह स्वयं थका और न उसकी लेखनी। देश प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए रसूल को किसी तर्क की आवश्यकता महसूस नहीं होती। अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कुछ चित्र खींचना ही उचित समझते हैं–

"तेज झरनों की धमक, धारों का गुल
बहते –बहते दूर छिप जाते हैं जो,
शोर नदिया का, स्रोतों की हँसी
जिस तरह शायर नशे में मस्त हो
अपना उद्गम यूं सादा को छोड़कर
किसलिए ए बहते जल यह कहकहे!
घेर लेती है उदासी मौनमय
छोड़ना पड़ता है जब भी घर मुझे।"

पशु –पक्षी प्राचीन समय से ही प्रतीक रूप में कवियों लेखकों तथा विचारकों के लिए आकर्षण का केंद्र तथा उनके विचारों और मनोभावों को व्यक्त करने के साधन रहे हैं। ऐसे प्रतीकों में से एक उकाब भी है जो दूरदर्शिता, शौर्य, ऊंची उड़ानों और समस्त पवित्र भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। उकाब के साथ पर्वत वासियों का विशेष संबंध हैं। वह कौन सा बंधन है, जिसने क़फ़क़ाज़ के पर्वत वासियों के साथ उकाब के संबंध को जीवित ही नहीं रखा, बल्कि और भी अटूट बनाया है। कहीं इस संबंध का आधार पर्वत–वासियों और उकाबों की उस साझी दीवानगी से तो नहीं है जिसका नाम स्वतंत्रता –प्रेम और स्वाधीनता की लगन है–

"जहाँ बस बर्फ है चाहे बरस
का कोई मौसम हो
उकाबो, तुमको किसने
उस जगह की राह दर्शा दी?
सकून और आंच की चाहत
नहीं लाई यहाँ हमको
बुलंदी का सबक हमको
यहाँ देती है आजादी
है प्रति जहाँ की इतनी
निष्ठुर मेरे हमवतनों,
वहाँ तक ले गई आखिर
तुम्हें किस चीज की चाहत?
बुलंदी की लगन ने बख्श
दी है हमको आजादी
यहाँ पर हमको लायी है लगन
सुख की, न गर्माहट।"

इन्सान का छिछोरापन आदिकाल से कवियों, लेखकों और समस्त बुद्धिजीवियों के लिए चिंता का विषय रहा है। आज भी जबकि उन्नति की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरकर मानव

सभ्यता इतने ऊंचे स्थान पर पहुँच गयी है, इंसान के मन का छिछलापन कम नहीं हुआ है–

"है कभी बेचैन लेखक है
कवि चिंतित कभी
सर हिलाता है कभी कुछ
सोचकर विद्वान भी
हट रहा है धीरे–धीरे अपने
तट को छोड़कर
धीरे धीरे मानो छिछला
हो रहा है कास्पी
मुझको यूं लगता है
यह सब सोचना बेकार है
कास्पी के छिछला होने
की नहीं चिंता मुझे
दिल हिलाती है दिलों के
छिछला हो जाने की बात
काटता है आदमी का
छिछला हो जाना मुझे।"

बीसवीं सदी विज्ञान और प्रोद्योगिकी की महान उपलब्धियों की सदी है। बीसवी सदी परमाणु आर परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग की सदी है, लेकिन सबसे बढ़कर यह युद्धपरेमी देशों और शांतिप्रेमी शक्तियों के बीच कड़ी संघर्ष और निर्णायक युद्ध की सदी है–

"माथे पे बल,
है बिफरी हुई बीसवीं सदी
हमको, सदी के बेटों को
कुछ शर्म है न लाज।
दुनिया में इससे पहले
कभी झूठ यौन न था,
इतना लहू बाह्य न था
न दुनिया में जितना आज।"

बीसवीं सदी के सपूत आज धीरे–धीरे विनाश के जिस मोड़ की ओर मानवता को धकेल रहे हैं, उसकी अनुभूति मात्र से कवि का हृदय सिहर उठता है और वह बेअख्तियार संसार की समस्त नारियों से विनाश और विध्वंश के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में कूद पड़ने का विशेष रूप से आवाहन करने लगता है ,क्योंकि नारी जननी है, नारी जीवन का प्रतीक है–

"पर्वतों में झगड़ते थे जब शेरदिल
कोई नारी अचानक झपटी थी तब
फेंक देती थी रुमाल कदमों में वो
छूट जाते थे हथियार हाथों के सब।
नारियों! नारियों!
देश यह सब के सब
इससे पहले कि हों खून से
तर–ब–तर
फेंक दो आंसुओं में भिगोए हुए
इनके कदमों के रुमाल अपने सुघर।

किसी भी संस्कृति में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाए जाते है– प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील। पहला दृष्टिकोण मनुष्यों के बीच अलगाव तथा घृणा को जन्म देकर इन भावों को परवान चढ़ाने की भरपूर कोशिश करता है। प्रगतिशील दृष्टिकोण विभिन्न परंपराओं को समझने के उद्देश्य से न केवल उचित वातावरण तैयार करता है, बल्कि ऐसी परंपराओं को सशक्त करने में एक यहां भूमिका निभाता है। इस दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में रसूल हमज़ातोव ने एक आदर्श सोवियत कवि के कर्तव्य को भली भांति समझा भी है और उसे निभाने की चेष्टा भी की है। दागिस्तान और महान सोवियत मातृभूमि तथा सोवियत संघ और विश्व के विभिन्न देशों के बीच परस्पर किस प्रकार के संबंध हों, इस पहलू पर रसूल ने अपनी कविता "पिता के साथ वार्तालाप" में भरपूर बहस की है। यहाँ विचार रसूल के हैं, किन्तु आवाज़ उनके पिता हमज़ा की है–

"तू जहां, जिस गाँव में
पैदा हुआ तकदीर से
बादलों के पार ही चाहे
न क्यों वह गाँव हो।
याद रख जीवित इकाई है
वह अपने देश की
एक धागे से बंधे है तेरा
घर और मॉस्को।"

"धरती मेरी" उस काव्य संग्रह का नाम है जिसने सोवियत साहित्य के आकाश पर एक नए तारे के उदित होने की घोषणा की थी। यह बात 1948 की है और जिक्र रसूल हमज़ातोव का। तब से आजतक उनके लगभग सत्तर काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रसूल की कविताओं पर उनके अपने व्यक्तित्व की छाप बड़ी गहरी है और यही विशेषता है जो उनकी समस्त रचनाओं को एक सूत्र में बांधती है। उनके बहुमुखी काव्य के विभिन्न पहलुओं को परखने के बाद एक ऐसे व्यक्ति का चित्र उभरता है जो स्वभाव से सज्जन, मानवप्रेमी, हंसमुख और सदाबहार है। एक ऐसे कवि की छवि सामने आती है, जिसका जीवन अनगिनत सूत्रों द्वारा जनसाधारण की आकांक्षाओं और स्वप्नों से जुड़ा है। रसूल हमजातोव को लोग प्यार से "जन–कवि" कहकर पुकारते हैं और यह गौरव एक ऐसे कवि को प्राप्त हो सकता है जिसने अपना मन, अपनी आवाज़, अपनी प्रतिभा और सारा जीवन जनता को अर्पित कर दिया हो।

मुझे इस महान जनकवि को अनेक बार मिलने और संवाद करने का अवसर मिला है। मैं उनसे दिल्ली में भी मिला, मॉस्को में भी और उनके गृह राज्य दागिस्तान में भी। मुझे उनकी कविताओं को उनके साथ मंच पर हिन्दी में प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पहले वह अपनी कविता रूसी भाषा में सुनाते थे उसके बाद उनकी कविता को हिन्दी में प्रस्तुत करके उनकी कविता के मर्म को भारतीय श्रोताओं के दिल तक पहुंचाने की भरपूर कोशिश की। उनकी लगभग 90 कविताओं का हिन्दी में अनुवाद मैंने किया है जो "धरती की सुंदरता पीकर" नामक कविता संग्रह के रूप में 1988 में प्रकाशित हुआ है। वर्ष 2023 इस महान जनकवि का जन्म शताब्दी वर्ष है। रसूल हमज़ातोव साहब की रचनाओं का रूस और भारत में पुनः प्रकाशन हो। मेरी यही कामना है कि प्रेम और मनुष्यता के इस महान पुजारी का साहित्य नई पीढ़ी के अधिकांश पाठकों तक पहुँचे।

(सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड से सम्मानित प्रोफेसर साबिर सिद्दीकी ने रसूल हमज़ातोव साहब पर शोध कार्य किया है। रसूल साहब की लगभग 90 कविताओं का रूसी से हिन्दी में अनुवाद किया है। ये अनुवाद "धरती की सुंदरता पीकर" पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है।)

क्षेत्रीय भाषा के अंतर्राष्ट्रीय लेखक : रसूल हमज़ातोव

अब्दुल बिस्मिल्लाह

कुछ साहित्यिक पुस्तकें ऐसी होती है जिन्हें बार बार पढ़ने का मन करता है। रसूल हमज़ातोव की विश्व प्रसिद्ध कृति "मेरा दागिस्तान" भी ऐसी किताब है जिसे आप कई बार पढ़ना चाहेंगे। "मेरा दागिस्तान" दो खंडों में प्रकाशित हुई है। पहला खंड मैंने चार बार पढ़ा है। पठनीयता की दृष्टि से दूसरा खंड पहले खंड की तुलना में कमजोर है।

"मेरा दागिस्तान" एक ऐसी लोकप्रिय और मानीखेज किताब है जिसमें साहित्य की अनेक विधाएं एक साथ मौजूद है। वैसे तो यह एक दिलचस्प आत्मकथा है लेकिन जब आप इसे पढ़ना प्रारंभ करते हैं तो लगता है कि आप एक कविता की किताब पढ़ रहे हैं, क्योंकि रसूल हमज़ातोव मूलतः कवि थे और इस पुस्तक में उन्होंने अनेक कविताएं उद्धृत की है, कुछ लोकगीत भी हैं। यह किताब संस्मरण विधा की अप्रतिम दस्तावेज़ है। "दागिस्तान"को पढ़ते समय आप कहानी और उपन्यास का लुत्फ भी उठाते है।

जब मुझे अपने उपन्यास " झीनी –झीनी बीनी चदरिया" पर सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड प्राप्त हुआ तो मुझे 15 दिनों की तत्कालीन संघ की यात्रा का सुनहरा अवसर मिला। यह अवार्ड साहित्य ,खेल और फिल्म आदि कई क्षेत्रों में दिया जाता था। मेरे साथ शतरंज खिलाड़ी विश्वनाथन आनंद और अभिनेता सुनील दत्त को भी यह अवार्ड दिया गया था। यात्रा से पहले मैं रसूल हमज़ातोव साहब के दर्शन दिल्ली में कर चुका था। कथाकार भीष्म साहनी साहब ने अफ्रीकन और एशियन युवा लेखकों के बैनर तले बतौर मुख्य अतिथि रसूल हमज़ातोव को दिल्ली में आमंत्रित किया था। उन्हें हिन्दी नहीं आती थी और मुझे रूसी लिहाज़ा उनसे बातचीत मुमकिन नहीं हो सकी। इस सोवियत यात्रा में रसूल साहब से तो नहीं मिलना हुआ लेकिन अनेक रूसी साहित्यकारों से मुलाकातें हुई।

सोवियत संघ के विघटन के 13 साल बाद मुझे जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय दूतावास, मॉस्को में बतौर प्राध्यापक दो साल के लिए रुसियों को हिन्दी पढ़ाने का अवसर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की ओर से मिला। दो साल के इस अनुबंध के कारण मुझे अनेक रूसी विद्वानों से मिलने का मौका मिला। अनेक रूसी कवियों और लेखकों के साहित्य को हिन्दी अनुवाद के जरिए भारती पाठकों तक सुलभ कराने का काम डॉक्टर मदनलाल मधु ने किया है। 2003 में मॉस्को पहुँचकर सबसे पहले डॉक्टर मदनलाल मधु से मुलाकात की। मधु जी को यह जानकार बेहद खुशी हुई कि मुझे दो साल मॉस्को में रहकर हिन्दी शिक्षण और हिन्दी के प्रचार–प्रसार का कार्य करना है। मैंने मधु जी से कहा कि मेरी दिली तमन्ना है कि आपके साथ दागिस्तान चलकर रसूल हमज़ातोव साहब से मिलूँ। "मेरा दागिस्तान" का हिन्दी अनुवाद डॉक्टर मधु ने किया था इसलिए वह रसूल साहब को व्यक्तिगत रूप से जानते थे। मधु जी ने कहा ठीक है आने वाले कुछ महीनों में यदि हमज़ातोव मॉस्को आएंगे तो उनसे यहीं मुलाकात हो जायेगी अन्यथा दागिस्तान चलकर उनसे मिलेंगे। लेकिन कुछ ही महीने बीते थे कि मेरे घर के फोन की घंटी बजी, मैंने फोन उठाया, दूसरी तरफ से बड़े भारी मन से मधु जी बोले –"बिस्मिल्लाह साहब, आपके महबूब लेखक रसूल हमज़ातोव साहब नहीं रहे। 3 नवंबर, 2003 को वह फ़ानी दुनिया को अलविदा कह गए।" यह खबर सुनकर मैं बहुत दुखी हुआ। एक बड़े लेखक से रूबरू मुलाकात और बातचीत का अरमान अधूरा रह गया।

अवार भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने वाले शब्दों के जादूगर रसूल हमज़ातोव की भाषा बड़ी लयात्मक थी। हिन्दी कविता ने तो छंद के बंधन तोड़ दिए, उर्दू कविता ने भी मुक्त छन्द का दामन पकड़ा लेकिन रूसी कविता रूसी भाषा की लयात्मकता के कारण छंद बद्ध का एहसास कराती है। रसूल साहब का गद्य भी कवितामय लगता है। "मेरा दागिस्तान" ने उन्हें पूरे विश्व में पहचान दिलायी। जब आप "दागिस्तान" किताब पढ़ते हैं तो लगता है कि आप स्वयं दागिस्तान में घूम रहे हैं। रसूल हमज़ातोव का जादुई अंदाज़े बयां उन्हें दुनिया का महान लेखक बनाता है। "मेरा दागिस्तान" के अधिकांश वाक्य सूक्तिपरक है जो पाठकों को रुहानी सुकून देते हैं। उनके कुछ वाक्य देखिए –"यदि तुम अतीत पर बंदूक से गोली चलाओगे तो भविष्य तुम पर तोपों से गोली बरसाएगा।" या "साहस यह नहीं पूछता कि चट्टान कितनी ऊंची है" अथवा "अबूतालिब ने कहा कि टोपी तो उसने लेव तोलस्तोय जैसी खरीद ली मगर वैसा सिर कहाँ से लाएगा।" आदि सूक्तियाँ पाठकों को संवेदनशील बनाने में और ज़िंदगी के बेहतर अनुभव को सिखाने में अनुपम है। "मेरा दागिस्तान" वास्तव में ज़िंदगी की किताब है जिसमें रसूल हमज़ातोव, अपने पिता के साथ साथ उस क्षेत्र के अनेक चरित्रों को खूबसूरती से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक उनसे तुरंत जुड़ जाता है। उन्होंने हाजी मुराद चरित्र का अद्भुत वर्णन किया है। उनकी वीरता और लड़ाइयों का रसूल साहब ने ऐसा दिलचस्प वर्णन किया है कि पाठक रोमांचित हो उठता है। एक लेखक का लेखन तभी सफल माना जाता है जब वह पाठकों तक, उनके दिल और दिमाग तक पहुंचता है। टैगोर, प्रेमचंद, तोलस्तोय, चेखव और गोर्की आदि के साथ साथ रसूल हमज़ातोव भी उसी श्रेणी के बहुत बड़े लेखक है जिन्हें पाठकों का भरपूर प्यार मिला है।

(डॉक्टर अब्दुल बिस्मिल्लाह भारत के जाने माने कवि–कथाकार है। 1987 में उन्हें सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड से नवाज़ा गया।)

ईमेल-abismillah786@gmail-com

मेरा दागिस्तान : किताबों के महासागर की ओर खुलने वाली एक छोटी लेकिन बेहद जरूरी खिड़की

आरती
E-mail:samaysakhi@gmail.com

"विषय" पर बात करते हुए रसूल हमजातोव कहते हैं कि– "कलकत्ते में रविंद्रनाथ टैगोर के घर में मैंने एक पक्षी का चित्र देखा। ऐसा पक्षी पृथ्वी पर कहीं नहीं है। और न कभी था। टैगोर की आत्मा में उसका जन्म हुआ और वह वही रहा। उनकी कल्पना का परिणाम था मगर जाहिर है अगर टैगोर ने हमारी दुनिया के असली परिंदे न देखे होते, तो वे अपने इस अद्भुत पक्षी की कल्पना भी न कर पाते।"

रसूल हमजातोव का ऐसा ही अनूठा पक्षी है "मेरा दगिस्तान"। रसूल ने जिसकी कल्पना की। इसके पहले ऐसी किताब पूरी दुनिया के साहित्य में नहीं थी। इस किताब के भीतर– किताब कैसी होनी चाहिए?नाम रखने की प्रक्रिया से लेकर भूमिका की जरूरत है या नहीं? एक अच्छी किताब क्या होती है? क्या होना चाहिए और क्यों?जैसे तमाम विषयों पर बात करते हुए अपनी आसपास की दुनिया से लेकर तमाम विश्व पर एक समानांतर नजर दौड़ाई गई है। किताब से जुड़े छोटे–छोटे बिंदु, विषय, विधा, भाषा, भूमिका, किताब को लेकर उठने वाले मन में संशय, संपादक, प्रकाशक, अनुवादक तमाम हिस्सों को लेकर के रसूल ने इस किताब के भीतर बात की है। रविन्द्रनाथ टैगोर के कल्पनालोक के पक्षी की तरह ही रसूल हमजातोव की यह किताब एक अद्भुत, अकल्पनीय किताब है और रसूल के ही शब्दों में कहें तो 'यह किताब वे इसलिए लिख पाए क्योंकि उन्होंने अपने दागिस्तान को उसकी बारीकियों के साथ देखा था।' दागिस्तान के साथ साथ रसूल ने पूरी दुनिया को देखा । उन्होंने कई जगह लिखा भी है कि – "दुनिया भर के अलग–अलग देशों से, वहाँ की खूबियों को देखते हुये मुझे हर बार अपना दागिस्तान याद आया। अपना जन्मगाँव याद आया। अपने लोग, अपने गीत, अपने पहाड़ याद आए।"

एक बैठक में खत्म करने के इरादे से इस किताब को न पढ़ें। इसके सफों पर दी हुई नसीहतों को सुनें, लेखक के साथ–साथ गाँव की चक्करदार गलियों में फेरा लगायें, किस्सों को समझें, गीतों को दिल से महसूस करें। बस इस किताब से बार–बार मिलते रहें।

यही कहना चाह रहे थे रसूल शायद इसीलिए मेरा दागिस्तान की शुरुआत कुछ ऐसे होती है–

"जब आँख खुलती है,
तो बिस्तर से
ऐसे लपककर मत उठो
मानो तुम्हें किसी ने
डंक मार दिया हो,
तुमने जो कुछ सपने में देखा है
पहले उस पर विचार कर लो।"

कुनकुने दूध से भरा गिलास है "मेरा दागिस्तान" जिसे धीरे–धीरे घूँट घूँट पीना होगा, तभी इसका स्वाद आएगा। इसके भीतर कभी न चुकने वाला खजाना भरा पड़ा है। कविता है, कहानी है, लोकोक्ति और मुहावरे हैं। संस्मरणों की लंबी डोर है जो भीतर ही भीतर एक दूसरे से जुड़ी है। कभी–कभी आलोचनात्मक वातावरण भी रसूल बनाते हैं। कई बार तो यह उपन्यास और आत्मकथा सा लगने लगता है। यह किताब दोस्तों के साथ अड्डेबाजी का सुख देती है। दादी–

नानी की रातभर चलने वाली कहानियों का मजा देती है। माता पिता की नसीहत है और अध्यापक का सिखाया अनुशासन इस किताब में निहित है। यह सच्चे प्रेम की तरह जीवन भर याद रहने वाली इबारत की तरह है। इस पुस्तक का कोई भी पृष्ठ, उस पृष्ठ का कोई भी पैरा, किसी भी वाकये पर ऊँगलियाँ रखें, बहुमूल्य अर्शर्फियाँ हाथ लगती हैं।

इस किताब को पढ़कर जाहिर है कि लेखकीय दुनिया में मान्यता प्राप्त एक लेखक को भी किसी नई रचना से पहले कितनी मुश्किल विचार प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, "मेरा दागिस्तान" उसी कशमकश का प्रमाण है। किसी किताब को लिखने से पहले उसकी पूरी बारीकियों पर किस तरह से पैनी नजर रखी जानी चाहिए, वे बारीकियाँ इस किताब को पढ़ने के बाद समझ में आती है और यह भी कि एक रचना, एक कविता, एक किताब कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। बेशक एक शब्द कितनी बड़ी जिम्मेदारी है तभी तो रसूल कहते हैं– "दुनिया में अगर शब्द न होता तो वह वैसी न होती, जैसी है।" और यह भी कि– "दीवारें अगर मजबूत नहीं है तो सुंदर मकान भी गिर सकता है।" आशय कि सुंदर शब्द और केवल भाषा से ही कोई किताब महत्वपूर्ण नहीं हो जाती।

अपने समय और पूर्व समय से हटकर की गई कल्पना और निराले ढंग से यह किताब लिखी गई है। जैसे– नोटबुक से... पिताजी कहा करते थे... अबूतालिब ने कहा... ऐसा कहते हैं.. .– यह कुछ नये प्रयोग हैं जिनसे किताब आगे बनती है और रोचकता बनाये रखती है।

बेतरतीब ढंग से चीजों को कहकर उसे और भी रोचक बनाने का फॉर्मूला जो किस्सों के पास होता है, वही "मेरा दागिस्तान" के पास है। ऐसा लगता है जैसे चौपाल में कोई लंबा किस्सा चल रहा है और उसमें कई लोग भागीदारी कर रहे हैं। सब अपने–अपने किस्से लेकर खड़े होते हैं, सुनाते हैं और बैठ जाते हैं।

रसूल ने ऐसे विषयों पर भी बात की है जिनसे एक संभ्रांत दूरी उस समय के लेखक भी बना रहे थे। एक बड़ा दिलचस्प उदाहरण इस किताब में है कि दागिस्तानी लेखक संघ के दरवाजे में एक समय पर लिखा हुआ था कि– "गहरी सैद्धांतिक तैयारी के बिना तुम्हें इस दरवाजे को लाँघने का अधिकार नहीं है"। अबूतालिब दागिस्तान के जनकवि, सोवियत संघ के सम्मानित सदस्य इस कोटेशननुमा चेतावनी को पढ़कर वापस आ जाते हैं। रूढ़ियाँ चाहे जैसी भी हों, बहुत ही अच्छे विचार के भीतर भी अपनी जगह बना लेती हैं। इसलिए शायद रसूल ने विचारों के ऊपर भी पूरी किताब में काफी बात की है। किसी रचना की बुनियाद में विचार जरूरी तत्व है लेकिन वह कैसे आना चाहिए?विचार झंडे की तरह नहीं, नारे की तरह नहीं हो, इस बात को रसूल ने कई उदाहरण देकर कहने की कोशिश की है और इस तरह पोलिटिकल कलेक्टनेस के बीच अपना पक्ष भी रखा है।

बीच–बीच में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना याद आते हैं कि "देश कागज पर बना कोई नक्शा नहीं है"। देश अपनी जनता के दिल में रहता है। वहाँ के कवियों की कविताओं में, चित्रकारों के चित्र में, कलाकारों के फन में, मेहनतकशों के पसीने की बूँदों में मुस्कुराता है। रसूल ने इस किताब में जटिल, आक्रामक और नारेबाज राष्ट्रवाद के बनिश्त जनता के दिल में रची बसी देशप्रेम की सीधी– साधी उक्तियाँ दोहराई हैं। कितने तरीकों से, कितने अलग–अलग उदाहरणों से उन्होंने समझाने की कोशिश की है कि देश क्या है और देशप्रेम क्या है?यहाँ पर नेहरू का प्रसिद्ध लेख भी याद आता है कि "भारत माता खेतों में लहलहाती फसल हैं, ये पहाड़, ये नदियाँ, और यहाँ रहने वाले सभी लोग भारत माता है। भारत माता कोई स्टेचू नहीं है।"

लोक पर लिखने की माँग को लेकर इस किताब की रचना प्रक्रिया रसूल हमजातोव के जेहन में पैदा होती है। लेकिन रसूल का लोक केवल दागिस्तान के पहाड़ों, झरनों, चारागाहों तक और अपने जन्म गाँव के सत्तर घरों तक सीमित नहीं रहता। अपनी कलम को लेकर वे पूरी दुनिया की सैर को निकलता है। रसूल का लोक जिसे जन्मभूमि प्रेम भी कहें, वह सीमाओं की संकीर्ण मानसिकता से मुक्त है। वे प्रेम के कवि महमूद को, हमजात त्सादा को, पढ़ना– लिखना तक न जानने वाले जनकवि सुलेमान स्तालस्की और बार बार अबूतालिब को याद करते हैं, तो वहीं मैक्सिम गोर्की, लियो तोलस्तोय, चेखव की भी बात करते हैं। रविन्द्रनाथ टैगोर और होमर की याद भी वे करते हैं। विभिन्न उद्धरणों के माध्यम से देखा जाए तो रसूल का देशप्रेम, मातृभाषा प्रेम सत्ताओं के प्रेम से अलग है। वह उनके द्वारा बनाए विध्वंसक राष्ट्रवाद की भर्त्सना करता है। अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ उन्होंने अपनी ऊँगली सोवितय रूस की जड़ताओं और ठसपने की ओर घुमाई है।

एक वाकया जिसे रसूल के लेखकीय व्यक्तित्व का वैशिष्टय भी कह सकते हैं, जो एक लेखक के विजन की खतरनाक गलतियों में से एक था। वह यह बात स्पष्ट करती है कि एक बड़ा जिम्मेदार लेखक भी गलतियाँ करता है। रसूल कहते हैं कि वह अपने एक कृत्य के लिए आजीवन शर्मिंदा रहेंगे, भले ही उनके पाठक उन्हें क्षमा कर दें। मसला यह था कि दागिस्तान की आजादी को लेकर जीवन न्योछावर कर देने वाले क्रांतिकारी "शामिल" की छवि को जिस तरह से राजसत्ता ने षड्यंत्र कर उसे लोगों के बीच गद्दार बना दिया, उस आम गफलत और भावावेश में आकर रसूल ने एक कविता लिखी जिसमें शामिल की खूब भर्त्सना की गई थी। बाद को जब उनकी गलतफहमियां साफ हुई तब उन्होंने पश्चाताप करते

हुए दूसरी कविता शामिल की प्रशंसा में लिखी, जिसके लिए उन्हें आजीवन अपने पाठकों के सामने सफाई पेश करते रहना पड़ा। अपमानित होना पड़ा। एक लेखक को अपने इतिहास, अपने समकालीन वातावरण को लेकर कितना सतर्क रहने की जरूरत है, इसका उदाहरण है यह किस्सा। इसके अतिरिक्त भी रसूल लेखकीय जीवन की शुरुआत में जकड़ने वाली कमजोरियों का, यशलिप्सा का जिक्र भी करते रहे हैं।

पूरी किताब में सबसे रोचक, लोक जीवन की गहरी जड़ों से जुड़ा हुआ कोई व्यक्तित्व है, तो वह है– अबूतालिब। मस्तमौला, फकीराना और प्रतिबद्ध जिसे परत दर पर खोलकर रसूल ने मेरा दागिस्तान के भवन को खड़ा किया है। जाने क्यों अबूतालिब के किस्से सुनते हुए, उनकी जीवनचर्या को देखते हुए नागार्जुन याद आते हैं।

अपने समय और समाज के भीतर की जकड़नों के कुछ सूत्र हर लेखक और हर रचना (सतर्कता के बाद भी) भविष्य के पाठकों को थमा ही देती है। हम अपने समाज और दागिस्तानी समाज के बीच देखें तो कई चीजों में वह कितना समान है। औरतों की स्थिति लगभग वहाँ भी वैसी ही है। रसूल के द्वारा कहे गये किस्से, घटनाएं पुरुषों के बनिश्त औरतों की स्थिति खोलकर रख देतीं हैं। वहाँ भी वह दूसरे दर्जे की नागरिक ही है। रसूल ने अपने समय की बहुत अच्छी लेखिकाओं में से किसी का नाम तक नहीं लिया। जबकि वे किताब को लेकर के दुनिया भर की सैर कराते हैं।

अपने कवियों के गीतों को गुनगुनाता हुआ भी दागिस्तानी समाज लेखकों को वैसा ही आलसी और कामचोर समझता है जैसा कि हमारे समाज में आम अवधारणा रही है कि "लेखन कोई काम नहीं है।" "काम" खंड ने ऐसे कई दिलचस्प किस्से हैं। रसूल से एक महिला कामगारिन और एक बुजुर्ग किसान कहते हैं कि– "तुम भी अपने पिता की तरह कविताएं लिखते हो। तुम काम करना कब शुरू करोगे?"

और अंत में, इस किताब से ही एक बात– अफ्रीका में पाये जाने वाले एक फूल के बारे में रसूल ने बताया कि उस फूल की हर पंखुड़ी का रंग अलग था, सुगंध अलग थी। यानी कि एक फूल पूरा गुलदस्ता भी था और फिर भी वह एक ही फूल था। यह पुस्तक भी ऐसी ही है। यह जितनी स्थानीय है उतनी ही वैश्विक है। इसके भीतर व्यष्टि और समष्टि को, लघुता और विराट को देखने का नजरिया गहराई से धँसा है। यह किसी भी देश के लेखक, नागरिक का कुछ हर्फों के फेरबदल के बाद घोषणापत्र हो सकता है। यही मुख्य वजह है इस पुस्तक के प्रिय पुस्तक होने का।

और अंत में, उस दोस्त का शुक्रिया जिसने मुझे यह किताब भेंट की। इसे पढ़कर यह जान पाई कि कोई किताब इस तरह भी लिखी जा सकती है। दसियों–बीसियों बार पढ़कर भी जो किताब आपको नई लगे। और हमेशा यह एहसास दिलाये कि यह हमारी प्रिय पुस्तकों में से एक है।

मातृभाषा, विमर्श और साहित्य

यादवेन्द्र
(यादवेन्द्र जाने माने कवि, अनुवादक और संपादक है। केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान रुड़की के पूर्व निदेशक हैं। सिनेमा पर गंभीर लेखन के लिए जाने जाते हैं।)
ईमेल– yapandey@gmail-com

अपेक्षाकृत अल्पसंख्या या बगावती समुदायों के बीच बोली जाने जाने वाली भाषाओं मुख्य सत्ता के प्रहार की बावत पढ़ते हुए मुझे पता चला कि दो ढाई साल पहले रूस की एक प्रांतीय राजधानी में अपनी मातृभाषा उडमर्ट (Udmurt) के संरक्षण और अध्यापन की मांग करते हुए सत्तर साल के एक विद्वान एक्टिविस्ट अल्बर्ट राजिन के आत्मदाह ने पूरी दुनिया व ध्यान अपनी और खींचा था। वे अपने देश के सुदूर इलाकों में रहने वाले स्थानीय समुदायों व सदियों पुरानी भाषाओं को प्रतिबंधित कर रुसी भाषा को थोपने की नीति के खिलाफ़ आंदोलन कर रहे थे। समाचारों में मृतक के हाथ में ली तख्ती पर जो पंक्तियाँ लिखी थीं, वे यह थीं – 'यदि कल मेरी भाषा लुप्त हो जाती है। तो मैं क्या करूँगा भला जीकर, आज ही मर जाऊँ तो बेहतर।'

महत्वपूर्ण बात यह है कि ये पंक्तियाँ आजीवन अवार भाषा में (जिसकी राजनैतिक स्थिति वैसी ही है जो उडमर्ट भाषा की है) लिखने वाले महान रुसी कवि रसूल हमज़ातोव की हैं। जिनकी 2003 में अस्सी वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। रूस के

प्रशासकीय नियंत्रण वाला दागिस्तान गणतंत्र इस वर्ष यानि 2023 में अपने कवि की जन्मशती बड़े धूमधाम से मनाने जा रहा है।

कविता के लिए जीवन समर्पित कर देने वाले रसूल हमज़ातोव कहते हैं कि मेरे पूरे जीवन में यदि पूरा घंटा न भी हो तो कम से कम पाँच–मिनट तो ऐसा जरूर हो जो सिर्फ़ कविता के लिए हो। यह मेरे लिए जरुरत से बहुत ज्यादा है – मैं उस पाँच मिनट की बेहद कद्र करता हूँ, ये मेरे लिए अमूल्य हैं। यदि हम सबके जीवन में यह पाँच–पाँच मिनट कविता के लिए हो तो हम बड़ी तसल्ली से कह सकते हैं कि कविता ही जीवन है और जीवन ही कविता है।

मुझे याद नहीं आ रहा कि रुड़की के शुरुआती दिनों में किसने मुझे सबसे पहली बार 'मेरा दागिस्तान' पढ़ने की हिदायत दी थी लेकिन इतना याद है कि उसने कुछ कटाक्ष करते हुए यह कहा था कि तुम इतनी सारी किताबें पढ़ने का दावा करते हो और "मेरा दागिस्तान" अब तक नहीं पढ़ी। लेकिन जब पढ़ी तो लगा कि सच में मैं अब तक किस अमूल्य खजाने से वंचित रहा था। मेरे जीवन में अब तक सबसे ज्यादा बार पढ़ी जाने वाली और दोस्तों को उपहार में दी जाने वाली किताब यही है। इतना ही नहीं बगैर एक पल की भी देरी किए हुए मैं यह स्वीकार करने में कोताही नहीं कि यह मेरे जीवन में अब तक पढ़ी सबसे अच्छी किताब है। रूड़की विश्वविद्यालय (तब यह आई आई टी नहीं बना था) में रूसी पढ़ाने वाले प्रो साबिर सिद्दीकी से जब मिलना हुआ, तब यह जानकार और अच्छा लगा कि उन्होंने रसूल हमज़ातोव की कविताओं के रूसी से हिंदी अनुवाद किये हैं। हालांकि कविताओं को पढ़ने का मौका नहीं मिला। वैसे मुझे लगता है हिंदी की अधिकांश दुनिया रसूल हमज़ातोव को 'मेरा दागिस्तान' का गद्यकार ही मानती है। वैसे इस किताब में उद्धृत उनकी कविताओं की बात करें तो खेद के साथ कहूंगा कि मदनलाल मधु पाठकों को उनका वैसा रसास्वादन नहीं करा पाते जैसा गद्य में करा देते हैं।

सच कहूँ तो दागिस्तान नाम की इस धरती पर कोई जगह भी है, यह मुझे किताब पढ़ने से पहले नहीं मालूम था... और रसूल की किताब पढ़ने के बाद यह लगने लगा इस धरती पर दागिस्तान से ज्यादा सुंदर और सुसंस्कृत कोई और जगह नहीं। मन में दागिस्तान का सपना यूँ ही सुंदर बना रहता यदि दस बारह साल पहले इसका नाम गलत कारणों से अचानक सुर्खियों में न आया होता – इस बार दागिस्तान ने यह सुर्खियों रसूल हमज़ातोव के कारण नहीं बल्कि गृहयुद्ध और सांप्रदायिक हिंसा के लिए बटोरीं। लगा जैसे किसी ने मन में बसे किसी महानायक के बारे में कोई ओछा सा कमेंट कर दिया हो।

मजेदार बात यह कि दस लाख की आबादी और चालीस भाषाएँ बोलने वाले दागिस्तान की बात करते करते लेखक बार–बार सत्तर घरों वाले अपने गाँव त्सादा पहुँच जाता है जो अवार भाषी (2010 के आँकड़े बनाते हैं कि लगभग दस लाख लोग यह भाषा बोलते थे) है। रसूल ने अपना रचना कर्म अपनी मातृभाषा में ही किया जिसके अनुवाद रूसी और दुनिया की अन्य भाषाओं में किए गए। पर एक छोटे समुदाय की भाषा में रचा उनका साहित्य पूरे सोवियत समाज की आवाज बन गया। इसीलिए उन्हें अनेक सर्वोच्च सोवियत सम्मान दिये गए, बल्कि कहा यह जाता है कि सोवियत संघ और रूस का कोई बड़ा सम्मान ऐसा नहीं है जो रसूल को नहीं दिया गया। आखिरी दिनों में उनका अस्सीवाँ जन्मदिन रूस में बड़े धूमधाम और सम्मान के साथ मनाया गया था। राष्ट्रपति पुतिन ने उन्हें राष्ट्रपति भवन बुला कर सम्मानित किया, जिसकी तस्वीरें और भाषण मीडिया में छाए रहे।

पूरी किताब में कवि/लेखक अपने कवि पिता (हमजाद त्सादा अपनी भाषा के बड़े कवि माने जाते हैं.) को एक पथ प्रदर्शक के रूप में चित्रित करता है, जिनकी साफ़ हिदायत थी कि पिता की पगडंडी पिता के लिए ही रहने दो, अपने लिए नई पगडंडी ढूंढो वह बार–बार इस बात की ओर इशारा करते हैं कि किसी भाषा को समझने के लिए उस समाज को, उस धरती को, उसकी परंपराओं को पूरी अंतरंगता और तन्मयता के साथ जानना सबसे अनिवार्य शर्त है जिसके बारे में आप बोलने, लिखने या प्रतिनिधित्व करने जा रहे हैं। पहाड़ी घोड़ों से विचारों की तुलना करते हुए रसूल कहते हैं कि किसी दूसरे के घोड़े पर सवार मत होइए, पराए विचारों पर जीन मत कसिये, श्रेष्ठ रचनाओं के लिए अपने लिए अपने विचार खोजने होंगे। उनका मानना है कि विचार वह पानी नहीं जो शोर मचाता हुआ पत्थरों पर दौड़ लगाता है, छीटे उड़ाता है बल्कि वह पानी है जो अदृश्य रूप से मिट्टी को नम करता है और पेड़ पौधों की जड़ों को सींचता है।

पिता के हवाले से कहा है कि कवि की आत्मा बच्चे की आत्मा जैसे होती है, मेरा दागिस्तान में एक बच्चा कवि ही वाचक है जो ऐसा अभिनय करते हुए मित्र और अतिथि पाठकों को सम्मोहित करता है जैसे एक कवि के लिए गद्य की किताब लिखना असाधारण रूप से बड़ी चुनौती है और ऐसा करने में उसके छक्के छूटे जा रहे हैं सर्कस में जोकर जैसे एक सुई को उठाने के लिए अपनी सारी ताकत झोंक देने का स्वांग रचता है रसूल भी भरपूर खिलंदड़पन और शरारत के साथ ऐसा ही नाटक करते हैं। यह एक तरह की कवि की बात ही है जो उनकी बातों को, उनके विचारों को कविता के संदर्भ में, समाज के और देश के संदर्भ में, भाषा के संदर्भ में पूरी तरह खोलती है और यह सब वह किवदंतियों के माध्यम से, किस्से कहानियों के माध्यम

से और अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से बड़ी बारीकी और कुशलता के साथ करते हैं।

इस प्रक्रिया में अल्लाह का सिगरेट जलाना और गायक का कार्यक्रम के शुरू में पहले इतनी देर तक यूँ ही तारों का झनझनाना बड़े प्रतीकात्मक और प्रभावशाली रूपक हैं, जो कवि की बातों को बहुत खोल कर रखते हैं कि अभी तो मैं किताब के लिए उपयुक्त शब्द खोज रहा हूँ। उन्होंने बोलना और जबान – इन दोनों के बीच व्यावहारिक फ़र्क बताया है कि बोलना सीखने के लिए सिर्फ दो साल चाहिए लेकिन जबान सीखने के लिए और उसे वश में कैसे रखा जाए, इसके लिए साठ साल चाहिए। इसके बाद भी किसी धुरंधर और चालाक खिलाड़ी की तरह बड़ी कुशलता से वे यह कहकर बहुत सारे आरोपों से निर्दोष ढंग से मुक्त हो जाते हैं कि न कहे शब्द कहे गए शब्दों से ज्यादा प्यारे होते हैं। समझने वाले समझ गए, न समझे वो अनाड़ी है।

अपनी माटी, पानी और भाषा के प्रति उनका जबरदस्त आग्रह कि उसके समर्थन में वे तरह–तरह के उदाहरण देते हैं– जैसे सोवियत संघ के सर्वश्रेष्ठ अस्पताल में जब बीमार पड़े पिता का इलाज चल रहा था और हर तरह की दवा असरहीन साबित हो रही थी तो उनके कहने पर गाँव की नदी से पानी मँगवाया गया और उसी अवार पानी से वे चंगा हुए। गाँव में प्रचलित एक किस्से का हवाला देते हुए वे कहते हैं कि एक स्त्री ने झगड़ा करने के बाद दूसरी स्त्री को कोसते हुए यह शाप दिया कि अल्लाह तुम्हारे बच्चों को उनकी माँ की भाषा से वंचित कर दे रसूल की दृष्टि में इससे बड़ा शाप और कुछ भी नहीं हो सकता। पूरी किताब मातृभाषा के – बेशर्त प्रेम और आग्रह के इर्द गिर्द बुनी गई है।

रसूल हमज़ातोव इस किताब के प्रकाशन के सालों बाद अपने रचनात्मक कन्विक्शन को एक इंटरव्यू में फिर से दुहराते हैं– 'कवि कोई प्रवासी पक्षी नहीं होते। कोई भी कविता जिसका अपना देसी पता ठिकाना नहीं होता, अपनी देसी मिट्टी नहीं होती, अपना जिसका चूल्हा नहीं होता, जिसका अपना घर नहीं होता। वह ऐसा पेड़ है जिसकी जड़े नहीं हैं, ऐसा परिंदा है जिसका अपना कोई घोंसला नहीं है।'

इस किताब को लिखते हुए वे बड़ी साफ़गोई के साथ खुलासा करते हैं कि सबसे साधारण ही सबसे महान होता है। तुच्छता केवल बड़ी चीजों और घटनाओं को ही देख सकती है और अपने आसपास की चीजों पर उसकी कोई नज़र नहीं जाती..। उनका पूरा लेखन इस विचार के इर्द गिर्द घूमता रहता है।

रसूल दागिस्तान के इतिहास की बात करते हैं तो कहते हैं कि दागिस्तान का इतिहास तलवारों ने लिखा है। सिर्फ बीसवीं सदी ने ही दागिस्तान को कलम दी और कलम की परंपरा में वे स्वयं खड़े होकर बड़ी विनम्रता के साथ अपने समाज, अपने देश, अपने लोगों और अपनी भाषा के बारे में दुनिया को बताते हैं... किसी दूसरी भाषा (जिसे वे सास की उपमा देते हैं) में नहीं बल्कि अपनी माँ की भाषा में। वे कहते हैं कि यदि उस भाषा में यह खूबियाँ न समाहित हों तो कविता नहीं लिखी जा सकती और जब कविता नहीं होगी तो पहाड़ विराट पत्थर बन जाएँगे, बारिश परेशान करने वाले पानी के डबरा में बदल जाएगी और सूर्य गर्मी देने वाला अंतरिक्ष पिंड बनकर रह जाएगा। इसी क्रम में वे आगे कहते हैं कि मैं ऐसी पुस्तक लिखना चाहता हूँ जिसमें भाषा व्याकरण के अधीन न होकर व्याकरण भाषा के अधीन हो इसके शब्दों में जान, रंगीनी और धड़कन हो।

रसूल हमज़ातोव की साफगोई भी गजब की है। अपने युवावस्था के अनुभवों को साझा करते हुए वे लिखते हैं कि शुरू–शुरू में मैं अपनी कविताओं के रूसी में अनुवाद को लेकर बहुत लालायित रहता था। अपनी कविताओं में अवार भाषा के देशज संगीत ताल, लय इत्यादि की ओर ध्यान नहीं देता था... पता चला कि इसमें अलंकार विहीन भाव प्रमुख हो जाते हैं। मेरी कविताओं के अनुवाद लगातार रूसी भाषा में होते रहे लेकिन जैसे–जैसे समझ विकसित हुई, यह मालूम पड़ा कि मैं कविता कम चालाकी ज्यादा कर रहा हूँ और कविता और चालाकी दो तलवारें हैं।

साहित्य के बारे रसूल की अवधारणा परंपरा, वर्तमान और भविष्य के अभीप्सित के मेल–जोल से बनती है– इसे वे बड़े दिलचस्प पर अर्थपूर्ण उदाहरण के माध्यम से पाठकों के सामने रखते हैं कि कोलकाता आने पर ये रविंद्रनाथ ठाकुर के पास के एक पक्षी के चित्र की चर्चा करते हैं। वास्तव में जिसका कोई अस्तित्व आज, की दुनिया में नहीं है। वह उसको यूँ ही काल्पनिक कहकर हवा में नहीं उड़ा देते बल्कि कहते हैं कि एक कवि ही इस तरह की कल्पना कर सकता है। इसलिए वह उसे बड़े आदर के साथ रविंद्रनाथ ठाकुर का पक्षी कहते हैं।

रसूल हमज़ातोव की ये अमर पंक्तियाँ आज के दौर में साहित्य और मातृभाषा की सार्थकता और प्रभाव पर सवाल उठाने वाले जड़विहीन विमर्शकर्ताओं के हजार सवालों का माकूल जवाब दे सकती हैं– तभी मैं दूर से सुनता हूँ किसी को अपनी भाषा में बोलते हुए मुझ में अचानक जान लौट आती है। मैं समझ जाता हूँ कि वह पल आ पहुँचा है। जब मैं सारी बीमारियों से मुक्त हो जाऊँगा न किसी डॉक्टर की जरूरत होगी, न किसी दवा दारू की/मुझे तो बस चाहिए थी मेरी अपनी देसी भाषा किसी की हो जाती होगी ठीक बीमारी दूसरी भाषा से/पर मेरे लिए तो अपनी भाषा में न गा सकना ही/सबब है बीमारी का/यदि कल मेरी भाषा लुप्त हो जाती है। तो मैं क्या करूँगा भला जीकर/आज ही मर जाऊँ तो बेहतर।

इंडियन अवार्ड/RUSSIAN NATIONALS RECIPIENT OF PADMA AWARDS

PADMA BHUSHAN

	1961	Svetoslav Roerich (1904-1993)	Arts
	2002	Evgeny Chelyshev (1921- 2020)	Literature & Education
	2002	Gury Marchuk (1925-2013)	Science & Engineering
	2003	Herbert Yefremov (1933-)	Science & Engineering
	2006	Grigory Bongard-Levin (1933-2008)	Literature & Education
	2008	Yuli Vorontsov (1929-2007)	Public Affairs
	2018	Alexander Kadakin (1946-2017)	Public Affairs

PADMA SHRI

	1991	Madan Lal Madhu (1925-2014)	Literature & Education
	2000	Grigoriy Bondarevsky (1920-2003)	Literature & Education
	2004	Tatyana Elizarenkova (1929-2007)	Literature & Education
	2007	Rostislav Rybakov (1938-2019)	Literature & Education
	2007	Miriam Salganik (1930-2019)	Literature & Education
	2008	Gennady Pechnikov (1926-2018)	Arts
	2022	Tatyana Shaumyan (1938-)	Literature & Education

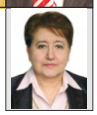

DIPOTSAV-2018

U.P. APRAWASI BHARTIYA RATAN AWARD -2019

	Rameshwar Singh (1961-)	Cultural & Welfare

रूसी-भारतीय मैत्री संघ 'दिशा' द्वारा हिंदी दिवस पर सम्मानित हिंदी विद्वानों का विवरण

सुश्री ल्युदमीला खखलोवा
सन : 2015
संस्थान : अफ्रीकन एशिया मास्को स्टेट विश्वविद्यालय
सम्मान : हिन्दी मित्र सम्मान
क्षेत्र : हिन्दी अध्यापन

सुश्री एकतेरीना कोस्तिना
सन : 2018
संस्थान : सेंटपिटर्स राजकीय विश्वविद्यालय
सम्मान : पद्मश्री मदन लाल मधु–'हिंदी सेवा सम्मान'
क्षेत्र : हिंदी प्रचार एवं शिक्षण

सुश्री येकतिरीना पानिना
सन : 2016
संस्थान : अफ्रीकन एशिया मास्को स्टेट विश्वविद्यालय
सम्मान : हिन्दी मित्र सम्मान
क्षेत्र : हिन्दी शिक्षण

श्री सागर सूद
सन : 2018
संस्थान : साहित्य कलश प्रकाशन
सम्मान : पद्मश्री मदन लाल मधु–'हिंदी सेवा सम्मान'
क्षेत्र : हिंदी साहित्यकार एवं संपादक

श्रीमती इंदिरा गाजिएवा
सन : 2017
संस्थान : रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय मास्को
सम्मान : पद्मभूषण अल्क्जांद्र कदाकिन 'हिंदी मित्र सम्मान'
क्षेत्र : हिंदी के प्रचार प्रसार एवं शिक्षण

डॉ. अलेक्सांदर सेंकेविच
सन : 2019
संस्थान : साहित्य, सांस्कृतिक और व्यावसायिक
सम्मान : पद्मश्री मदन लाल मधु–'हिंदी सेवा सम्मान'
क्षेत्र : कवि, कथाकार, साहित्यिक अनुवादक और भारतविज्ञ

श्री दिमित्री बाब्कॉव
सन : 2017
संस्थान : कजान फेडरेशन युनिवर्सिटी
सम्मान : पद्मश्री मदन लाल मधु–हिंदी सेवा सम्मान
क्षेत्र : हिंदी अनुवाद एवं शिक्षण

डॉ क्लारा दुकोवा
सन : 2019
संस्थान : मास्को अंतर्राष्ट्रीय संस्थान
सम्मान : पद्मभूषण अल्क्जांद्र कदाकिन 'हिंदी मित्र सम्मान'
क्षेत्र : हिन्दी शिक्षण

श्रीमती ग्युजेल स्त्रेलकोवा
सन : 2018
संस्थान : अफ्रीकन एशिया मास्को स्टेट विश्वविद्यालय
सम्मान : पद्मभूषण अल्क्जांद्र कदाकिन 'हिंदी मित्र सम्मान'
क्षेत्र : हिंदी शिक्षण एवं विकास हेतु

श्री सुशील कुमार 'आज़ाद'
सन : 2019
संस्थान : प्राध्यापक केंद्रीय विद्यालय मास्को
सम्मान : पद्मभूषण अल्क्जांद्र कदाकिन 'हिंदी मित्र सम्मान'
क्षेत्र : हिंदी के प्रचार प्रसार

ПАРТНЕРЫ:

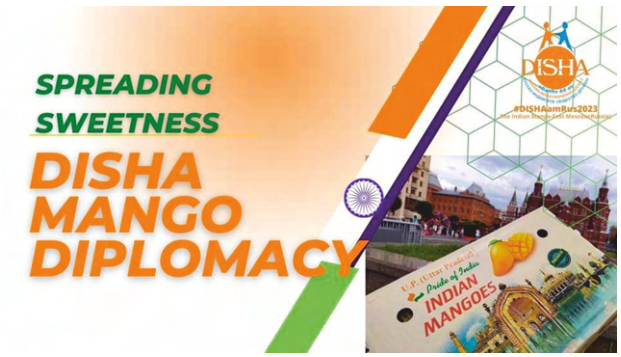

INDIAN FILMS

VULKANA
TEXSTYLE

ИНДИЙСКИЙ
ДЕЛОВОЙ СОВЕТ

RUSEURO
PHARM

МАГНУМ MAGNUM

ИнФОРМАЦИОННЫЕ ПАРТНЕРЫ:

TV BRICS
МЕЖДУНАРОДНАЯ
СЕТЬ

BHARAT РОССИЯ

rus education
education beyond boundaries

WE HELP YOU TO FULFIL YOUR ACADEMIC DREAMS!

STUDY IN RUSSIA

Largest Overseas Education Provider

Rus Education is one of the largest overseas medical education providers for Indian Students.

Representative Offices

Rus Education has Indian representatives in the universities to facilitate Indian Students in Russia.

Privately Managed Hostels

Hostels and mess facilities are provided to Indian students at the Top Government Medical Universities in Russia.

HEAD OFFICE, DELHI

Rus Education, No 2 IP Estate
Azad Bhawan Road New Delhi - 110002.
Web: www.ruseducation.in

Toll Free

1800-833-3338

rus education
education beyond boundaries